

ಗದಾರಾಧನಾ

ಪಾಠ್ಯ-ಪುಸ್ತಕ

ಬಿ.ಉ.ಸಿ., ಬಿ.ಉ.ಸಿ. (ಫೈಢ), ಬಿ.ವಿ.ಉ.ಸಿ.,
ಁಢ.ಉ.ಸಿ. (ಬಾಯಲಾಜಿಕಲ ಸಾಢ್ಢಸ), ಬಿ.ಉ-೪

ಪ್ರಥಢ ಸೆಢಿಸ್ಟರ

**B.Sc., B.Sc. (FAD), B.V.S.C., M.Sc.,
(Biological Sciences), B.S-4**

I SEMESTER

ಚಯನ ಆಧಾರಿತ ಕ್ರೆಡಿಟ ಪಢ್ಢತಿ
C.B.C.S.

–ಸಂಪಾಢಕ–

ಢಾ. ಶೆಖರ

ಢಾ. ಢಂಜುಶ್ರೀ ಢೆನನ



ಪ್ರಸಾರಾಂಗ

ಬೆಂಗಳೂರು ಕೇಂದ್ರ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ

ಬೆಂಗಳೂರು - 560 001

GADYARADHANA

Edited by Dr. Shekhar and
Dr. Manjushree Menon

Published by
Prasaraang, Bengaluru Central University,
Bengaluru – 560001.

pp. 87+ix

© बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण – 2019

संपादक :

डॉ. शेखर

डॉ. मंजुश्री मैनन

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय,

बेंगलूरु-560 001.

भूमिका

बेंगलूरु विश्वविद्यालय 2014-2015 शैक्षणिक वर्ष से सेमिस्टर पद्धति में सी.बी.सी.एस. स्कीम स्नातक वर्ग के लिए चला रहा है, किन्तु बेंगलूरु विश्वविद्यालय के त्रिभाजन के फलस्वरूप बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय की ओर से आगामी 2019-2020, 2020-2021 तथा 2021-2022 शैक्षणिक वर्षों के लिए नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण भी उपर्युक्त आधार पर ही स्नातक वर्ग हेतु किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी-अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर जी के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

संपादक-मण्डल का विश्वास है कि यह गद्य-संकलन छात्र-समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

इस संकलन को अल्प समय में सुन्दर रूप से छापने वाले प्रसारांग, बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के प्रति भी हम आभारी हैं।

प्रो. जाफ़ट.एस
कुलपति
बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय
बेंगलूरु

प्रकाशक की बात

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय ने स्नातक-वर्गों के लिए सेमिस्टर पद्धति (सी.बी.सी.एस) लागू किया है, उसके अनुसार हिन्दी-अध्ययन-मण्डल ने अपने विभागाध्यक्ष के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

पाठ्य-पुस्तक को समय पर तैयार करने में डॉ. शेखर जी और डॉ. मंजुश्री मैन्नन जी ने बड़ा सहयोग दिया है। उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

विश्वविद्यालय की ओर से पाठ्य-पुस्तकों को प्रकाशित कराने में कुलपति प्रो. जाफ़ट.एस जी ने अत्यन्त उत्साह दिखाया है। एतदर्थ मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक को सुन्दर रूप से छापने वाले मुद्रणालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

प्रसारांग

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय

अध्यक्ष की बात

बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय शैक्षणिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को आज के संदर्भ के अनुसार प्रस्तुत करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थितियों के अनुसार रूपित करने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

सेमिस्टर पद्धति (सी.बी.सी.एस) के अनुकूल स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। इस पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले संपादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इन नये पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में कुलपति महोदय प्रो. जाफ़ट.एस जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, एतदर्थ मैं इनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक के प्रकाशक, प्रसारांग, बेंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

डॉ. शैखर

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

बेंगलूरु विश्वविद्यालय

सम्पादक की कलम से.

हिन्दी साहित्य बहु-आयामी है । आदिकाल से आधुनिक काल तक की यात्रा के दौरान हिन्दी में विपुल रूप से परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा है । इस दौरान हिन्दी साहित्यक विधाओं में विशेषतः गद्य के विभिन्न रूपों में पर्याप्त रचनाएँ हुई हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है ।

हिन्दी, समन्वय-एकता और अखण्डता की भाषा भी है । आधुनिक युग की सभी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी ने समन्वय स्थापित किया है । हिन्दी भाषा की यह समन्वय प्रवृत्ति उसके साहित्य में भी पायी जाती है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साहित्य की उदारता ने ही भाषा को भी उदार बनाया है । इस प्रकार हिन्दी भाषा और उसका साहित्य दोनों ही राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गए हैं ।

संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्यों की परम्परा विकसित होकर हिन्दी साहित्य लगभग बारह सौ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में निरन्तर राष्ट्रीय एकता का वाहक बनकर विकास की ओर बढ़ रहा है । आज़ादी के पहले और बाद में पाली साहित्य का भी काफी प्रभाव हिन्दी साहित्य पर हुआ ।

हिन्दी साहित्य की यात्रा के इस युग में कहानी,

रेखाचित्र, एकांकी, नाटक, आत्मकथा, उपन्यास, हास्य-व्यंग्य, रिपोर्ताज, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, निबन्ध जैसी अनेक विधाएँ गद्य साहित्य में पनपीं। आज वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी गद्य साहित्य ने अपना एक सुदृढ़ स्थान और पहचान बना लिया है।

आज किसी भी साहित्य की पहुँच दुनिया के कोने-कोने में संभव हुई है तो इसमें कंप्यूटर तकनीक का बहुत बड़ा योगदान है। और अगर हम कंप्यूटर तकनीक के विद्यार्थियों को साहित्य से जोड़े रख सकें, तो आनेवाले समय में साहित्य की नवकृति से खुद भी अवगत होंगे और दुनिया को भी द्रुतगति से इसका परिचय कराते हुए आगे ले जाएँगे।

गद्य विधा का यह संकलन बंगलूरु केन्द्र विश्वविद्यालय के बी.एस.सी., बी.एस.सी (फ़ैड), बी.वी.एस.सी., एस.एस.सी. (बायोलॉजिकल साइन्स), बी.एस-4 (प्रथम सेमिस्टर) स्नातक वर्ग के लिए (सी.बी.सी.एस) चयन आधारित क्रेडिट पद्धति पर आधारित पाठ्यक्रम है। इस गद्य संकलन का प्रमुख उद्देश्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों के विद्यार्थियों को हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाओं से परिचित कराना है।

विद्यार्थियों की अभिरुचि और आवश्यकता को ध्यान में रखकर संकलन की पाठ्य सामग्री को रोचक और

ज्ञानवर्द्धक बनाने का प्रयास किया गया है ।

इस संकलन में जिन साहित्यकारों की रचनाएं संग्रहित हैं, उनके प्रति हम आभारी हैं। आशा है कि प्रस्तुत संकलन विद्यार्थियों में साहित्य को समझने में सहयोग करेगा और साथ ही उनमें सामाजिक सरोकारों की भावनाओं को मजबूत करेगा । यह संकलन उनमें राष्ट्रीय चेतना और एकता के विचार को प्रबल बनाने में सफल होगा ।

डॉ. शेखर
डॉ. मंजुश्री मैनन

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
1. मंत्र (कहानी) - प्रेमचंद 01
2. एक चरित्र (रेखाचित्र) - पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी 24
3. रीढ़ की हड्डी (एकांकी) - जगदीशचन्द्र माथुर 32
4. सम्पादन में नया प्रतिमान रचनेवाले 'रवीन्द्र कालिया' (संस्मरण) - चित्रा मुद्गल 52
5. कस्तूरी कुंडल बसै (व्यंग्य) - ईष्ट देव सांकृत्यायन 62
6. बहता पानी निर्मला (यात्रा वृतांत) - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' 70
7. उल्काएँ (विचारात्मक निबंध) - डॉ. गोरख प्रसाद 80
8. परिशिष्ट -वैज्ञानिक शब्दावली 85



1-मंत्र

- मुंशी प्रेमचंद

लेखक परिचय

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई. में वाराणसी के 'लमही' नामक गाँव में हुआ था। उनका असली नाम धनपतराय था। उनको बचपन में बड़ी कठनाइयों का सामना करना पड़ा था। वे पहले उर्दू में नवाबराय के नाम से कहानियाँ लिखते थे। उन्होंने हिन्दी में लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। हिन्दी कथा साहित्य को उन्होंने तिलस्मी तथा ऐयाशी दायरे से बाहर निकालकर उसे एक स्वस्थ जीवनोन्मुखी दृष्टि दी है जिससे आज वह विकास की उँची मंज़िल पर पहुँच चुका है। वे कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार और संपादक थे। 8 अक्टूबर सन् 1936 ई. में उनका देहांत हुआ। 'वरदान', 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान (उपन्यास)', 'प्रेम की वेदी', 'कर्बला (नाटक)', 'पंच-परमेश्वर', 'कफन', 'बड़े घर की बेटी (कहानियाँ)' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत कहानी 'मंत्र' में 'भगत' जैसे अनपढ़, गरीब लोगों के घर भले ही छोटे हों पर उनका दिल बहुत बड़ा होता है। ऐसे लोग अपने 'कर्म' के साथ कभी भी नाइन्साफी नहीं कर पाते। यदि उनके द्वारा किसी की जान बचाई जा सकती है तो अपनी तरफ से कोई मौका नहीं छोड़ते। इसके विपरीत डॉ. चड्ढा जैसे पढ़े-लिखे

व्यक्तियों का काम होता है समय की परवाह किये बिना मरीजों का इलाज करना और उनकी जान बचाना । पर अफसोस, उन्हें दूसरों की जान से अधिक अपने आमोद-प्रमोद की चिन्ता थी । धन कमाते-कमाते इनमें मानवीयता कहीं खो-सी जाती है । अंजाने में ही अपने अन्दर की उदारता को दिखाकर डॉ. चड्ढा में इंसानियत का भाव जाग्रत कर जाता है 'भगत' ।

* * * * *

1

संध्या का समय था । डॉक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने के लिए तैयार हो रहे थे । मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहार एक डोली लिये आते दिखायी दिये । डोली के पीछे एक बूढ़ा लाठी टेकता चला आता था । डोली औषधालय के सामने आकर रुक गयी । बूढ़े ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक से झाँका । ऐसी साफ-सुथरी जमीन पर पैर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई घुड़क न बैठे । डॉक्टर साहब को खड़े देख कर भी उसे कुछ कहने का साहस न हुआ ।

डॉक्टर साहब ने चिक के अंदर से गरज कर कहा- कौन है? क्या चाहता है?

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा- हुज़ूर बड़ा गरीब आदमी हूँ । मेरा लड़का कई दिन से

डॉक्टर साहब ने सिगार जला कर कहा-कल सबेरे आओ,

कल सबेरे, हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते ।

बूढ़े ने घुटने टेक कर ज़मीन पर सिर रख दिया और बोला—
दुहाई है सरकार की, लड़का मर जायगा! हुज़ूर, चार दिन से
आँखें नहीं

डॉक्टर चड़्ढा ने कलाई पर नज़र डाली । केवल दस मिनट
समय और बाकी था । गोल्फ़-स्टिक खूँटी से उतारते हुए
बोले—कल सबेरे आओ, कल सबेरे । यह हमारे खेलने का
समय है ।

बूढ़े ने पगड़ी उतारकर चौखट पर रख दी और रो कर बोला—
हुज़ूर, एक निगाह देख लें । बस, एक निगाह! लड़का हाथ
से चला जायगा हुज़ूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है,
हुज़ूर । हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे, सरकार!
आपकी बढ़ती होय, दीनबंधु!

ऐसे उजड़ड देहाती यहाँ प्रायः रोज़ आया करते थे । डाक्टर
साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे । कोई कितना ही
कुछ कहे; पर वे अपनी ही रट लगाते जायँगे । किसी की
सुनेंगे नहीं । धीरे से चिक उठाई और बाहर निकल कर मोटर
की तरफ़ चले । बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा—
सरकार, बड़ा धरम होगा । हुज़ूर, दया कीजिए, बड़ा दीन—
दुखी हूँ । संसार में कोई और नहीं है, बाबू जी!

मगर डॉक्टर साहब ने उसकी ओर मुहँ फेर कर देखा तक
नहीं । मोटर पर बैठ-कर बोले—कल सबेरे आना ।

मोटर चली गयी । बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा । संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवाह नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था । सभ्य संसार इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था । वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शांत करने के लिए सदैव तैयार रहते थे । जब तक बूढ़े को मोटर दिखायी दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा । शायद उसे अब भी डॉक्टर साहब के लौट आने की आशा थी । फिर उसने कहारों से डोली उठाने को कहा । डोली जिधर से आयी थी, उधर ही चली गयी । चारों ओर से निराश हो कर वह डॉक्टर चड्ढा के पास आया था । इनकी बड़ी तारीफ सुनी थी । यहाँ से निराश हो कर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया । किस्मत ठोक ली!

उसी रात उसका हँसता-खेलता सात साल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार से सिधार गया । बूढ़े माँ-बाप के जीवन का यही एक आधार था । इसी का मुहँ देख कर जीते थे । इस दीपक के बुझते ही जीवन की अँधेरी रात भाँय-भाँय करने लगी । बुढ़ापे की विशाल ममता टूटे हुए दय से निकल कर अंधकार आर्त्-स्वर से

रोने लगी ।

2

कई साल गुज़र गये । डॉक्टर चड्ढा ने ख़ूब यश और धन कमाया; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक साधारण बात थी । यह उनके नियमित जीवन का आर्शीर्वाद था कि पचास वर्ष की अवस्था में उनकी चुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लज्जित करती थी । उनके हर एक काम का समय नियत था, इस नियम से वह जौ-भर भी न टलते थे । बहुधा लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं । डॉक्टर चड्ढा उपचार और संयम का रहस्य ख़ूब समझते थे । उनकी संतान-संध्या भी इसी नियम के अधीन थी । उनके केवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की । तीसरी संतान न हुई, इसीलिए श्रीमती चड्ढा भी अभी जवान मालूम होती थीं । लड़की का तो विवाह हो चुका था । लड़का कालेज में पढ़ता था । वही माता-पिता के जीवन का आधार था । शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रसिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गौरव, युवक-समाज की शोभा । मुखमंडल से तेज की छटा-सी निकलती थी । आज उसकी बीसवीं सालगिरह थी ।

संध्या का समय था । हरी-हरी घास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थीं । शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ, कॉलेज के छात्र

दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलाशनाथ ने लिखा था। वही मुख्य एक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज़ पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव, इधर मित्रों की आव भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता-कैलाश, ज़रा इधर आना कोई उधर से बुलाता-कैलाश, क्या उधर ही रहोगे? सभी उसे छेड़ते थे, चुहलें करते थे, बेचारे को ज़रा दम मारने का अवकाश न मिलता था। सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर पूछा-क्यों कैलाश, तुम्हारे साँप कहाँ हैं? ज़रा मुझे दिखा दो।

कैलाश ने उससे हाथ मिलाकर कहा-मृणालिनी, इस वक्त क्षमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने आग्रह किया-जी नहीं, तुम्हें दिखाना पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने की। तुम रोज 'कल-कल' करते हो।

मृणालिनी और कैलाश दोनों सहपाठी थे और एक-दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलाश को साँपों को पालने, खेलाने और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रखे थे। उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करता रहता था। थोड़े दिन हुए, उसने विद्यालय में 'साँपों' पर एक मार्क का व्याख्यान दिया था। साँपों को नचा कर दिखाया भी था! प्राणिशास्त्र के बड़े-बड़े पंडित भी यह व्याख्यान सुन कर दंग रह गये थे!

यह विद्या उसने एक बड़े सँपेरे से सीखी थी। साँपों की जड़ी-बूटियाँ जमा करने का उसे मरज था। इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था। उसे लेकर ही छोड़ता था। यही व्यसन था। इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था। मृणालिनी कई बार आ चुकी थी पर कभी साँपों को देखने के लिए इतनी उत्सुक न हुई थी। कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गयी थी, या वह कैलाश पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी पर उसका आग्रह बेमौका था। उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायगी, भीड़ को देख कर साँप कितने चौकेंगें और रात के समय उन्हें छोड़ा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे ज़रा भी ध्यान न आया।

कैलाश ने कहा—नहीं, कल ज़रूर दिखा दूँगा। इस वक्त अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा, कमरे में तिल रखने को भी जगह न मिलेगी।

एक महाशय ने छोड़ कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते, ज़रा—सी बात के लिए इतना टाल-मटोल कर रहे हो? मिस गोविंद, हर्गिज़ न मानना। देखें कैसे नहीं दिखाते!

दूसरे महाशय ने और रद्दा चढ़ाया—मिस गोविंद इतनी सीधी और भोली हैं, तभी आप इतना मिजाज करते हैं दूसरी सुंदरी होती, तो इसी बात पर बिगड़ खड़ी होती।

तीसरे साहब ने मज़ाक उड़ाया—अजी बोलना छोड़ देती । भला, कोई बात है! इस पर आपका दावा है कि मृणालिनी के लिए जान हाज़िर है ।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे रंग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी वकालत न करें, मैं खुद अपनी वकालत कर लूँगी । मैं इस वक्त साँपों का तमाशा नहीं देखना चाहती । चलो, छुट्टी हुई ।

इस पर मित्रों ने ठट्टा लगाया । एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें, पर दिखाये भी तो ?

कैलाश को मृणालिनी की झेंपी हुई सूरत को देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उनका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है । ज्योंही प्रीति—भोज समाप्त हुआ और गाना शुरु हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले जाकर महुअर बजाना शुरु किया । फिर एक—एक खाना खोलकर एक—एक साँप को निकालने लगा । वाह! क्या कमाल था! ऐसा जान पड़ता था कि वे कीड़े उसकी एक—एक बात, उसके मन का एक—एक भाव समझते हैं । किसी को उठा लिया, किसी को गर्दन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया । मृणालिनी बार—बार मना करती कि इन्हें गर्दन में न डालो, दूर ही से दिखा दो । बस, ज़रा नचा दो । कैलाश की गर्दन में साँपों को लिपटते देख कर उसकी जान निकली जाती थी । पछता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही

इनसे साँप दिखाने को कहा; मगर कैलाश एक न सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपने सर्प-कला-प्रदर्शन एक ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता ! एक मित्र ने टीका की-दाँत तोड़ डाले होंगे ।

कैलाश हँसकर बोला-दाँत तोड़ डालना मदारियों का काम है । किसी के दाँत नहीं तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ? कह कर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला-‘मेरे पास इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है, अगर किसी को काट ले, तो आदमी आनन-फानन में मर जाय । लहर भी न आये । इसके काटे पर मन्त्र नहीं । इसके दाँत दिखा दूँ?

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा- नहीं-नहीं, कैलाश, ईश्वर के लिए इसे छोड़ दो । तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ । इस पर एक-दूसरे मित्र बोले-मुझे तो विश्वास नहीं आता, लेकिन तुम कहते हो, तो मान लूँगा ।

कैलाश ने साँप की गर्दन पकड़कर कहा- नहीं साहब, आप आँखों से देख कर मानिए । दाँत तोड़कर वश में किया, तो क्या । साँप बड़ा समझदार होता है । अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह उसे हर्गिज न काटेगा ।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलाश पर इस वक्त भूत सवार है, तो उसने यह तमाशा न करने के विचार से कहा-अच्छा

भाई, अब यहाँ से चलो। देखा, गाना शुरू हो गया है। आज मैं भी कोई चीज़ सुनाऊँगी। यह कहते हुए उसने कैलाश का कंधा पकड़ कर चलने का इशारा किया और कमरे से निकल गयी मगर कैलाश विरोधियों का शंका-समाधान करके ही दम लेना चाहता था। उसने साँप की गर्दन पकड़ कर जोर से दबायी, इतनी जोर से दबायी कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गयीं। साँप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि मुझे मार डालना चाहते हैं, अतएव वह आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया।

कैलाश ने उसकी गर्दन खूब दबा कर मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दाँत दिखाते हुए बोला-जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख लें। आया विश्वास या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देखें और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने सन्देह को स्थान कहाँ। मित्रों का शंका-निवारण करके कैलाश ने साँप की गर्दन ढीली कर दी और उसे ज़मीन पर रखना चाहा, पर वहा काला गेहूँवन क्रोध से पागल हो रहा था। गर्दन नरम पड़ते ही उसने सिर उठा कर कैलाश की उँगली में ज़ोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलाश की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने ज़ोर से उँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ दौड़ा। वहाँ मेज़ की दरज में एक जड़ी रखी हुई थी,

जिसे पीस कर लगा देने से घातक विष भी रफू हो जाता था । मित्रों में हलचल पड़ गई । बाहर महफिल में भी खबर हुई । डॉक्टर साहब घबरा कर दौड़े । फौरन उँगली की जड़ कस कर बाँधी गयी और जड़ी पीसने के लिए दी गयी । डॉक्टर साहब जड़ी के कायल न थे । वह उँगली का डसा भाग नशतर से काट देना चाहते, मगर कैलाश को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था । मृणालिनी प्यानो पर बैठी हुई थी । यह खबर सुनते ही दौड़ी, और कैलाश की उँगली से टपकते हुए खून को रुमाल से पोंछने लगी । जड़ी पीसी जाने लगी: पर उसी एक मिनट में कैलाश की आँखें झपकने लगीं, ओठों पर पीलापन दौड़ने लगा । यहाँ तक कि वह खड़ा न रह सका । फर्श पर बैठ गया । सारे मेहमान कमरे में जमा हो गए । कोई कुछ कहता था । कोई कुछ । इतने में जड़ी पीसकर आ गयी । मृणालिनी ने उँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता । कैलाश की आँखें बन्द हो गयीं । वह लेट गया और हाथ से पंखा झलने का इशारा किया । माँ ने दौड़कर उसका सिर गोद में रख लिया और बिजली का टेबुल-फैन लगा दिया ।

डॉक्टर साहब ने झुक कर पूछा कैलाश, कैसी तबीयत है? कैलाश ने धीरे से हाथ उठा लिए; पर कुछ बोल न सका । मृणालिनी ने करुण स्वर में कहा—क्या जड़ी कुछ असर न करेंगी? डॉक्टर साहब ने सिर पकड़ कर कहा—क्या

बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया। अब तो नशतर से भी कुछ फायदा न होगा।

आधे घंटे यही हाल रहा। कैलाश की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि उसकी आँखें पथरा गयीं, हाथ-पाँव ठंडे पड़ गये, मुख की कांति मलिन पड़ गयी, नाड़ी का कहीं पता नहीं। मौत के सारे लक्षण दिखायी देने लगे। घर में कुहराम मच गया। मृणालिनी एक ओर सिर पीटने लगी; माँ अलग पछाड़े खाने लगी। डॉक्टर चड्ढा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नशतर अपनी गर्दन पर मार लेते।

एक महाशय बोले—कोई मंत्र झाड़ने वाला मिले, तो सम्भव है, अब भी जान बच जाय।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब कब्र में पड़ी हुई लाशें ज़िन्दा हो गयी हैं। ऐसे-ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं।

डॉक्टर चड्ढा बोले—मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी बातों में आ गया। नशतर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती। बार-बार समझाता रहा कि बेटा, साँप न पालो, मगर कौन सुनता था! बुलाइए, किसी झाड़-फूँक करने वाले ही को बुलाइए। मेरा सब कुछ ले ले, मैं अपनी सारी जायदाद उसके पैरों पर रख दूँगा। लँगोटी बाँध कर घर से निकल जाऊँगा; मगर मेरा कैलाश, मेरा प्यारा कैलाश उठ बैठे। ईश्वर के लिए किसी को बुलवाइए।

एक महाशय का किसी झाड़ने वाले से परिचय था । वह दौड़कर उसे बुला लाये; मगर कैलाश की सूरत देखकर उसे मंत्र चलाने की हिम्मत न पड़ी । बोला—अब क्या हो सकता है, सरकार? जो कुछ होना था, हो चुका?

अरे मुखर्ष, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था, वह कहाँ हुआ? माँ—बाप ने बेटे का सेहरा कहाँ देखा? मृणालिनी का कामना—तरु क्या पल्लव और पुष्प से रंजित हो उठा? मन के वह स्वर्ण—स्वप्न जिनसे जीवन आनंद का स्रोत बना हुआ था, क्या पूरे हो गये? जीवन के नृत्यमय तारिका—मंडित सागर में आमोद की बहार लूटते हुए क्या उनकी नौका जलमग्न नहीं हो गयी? जो न होना था, वह हो गया ।

वही हरा—भरा मैदान था, वही सुनहरी चाँदनी एक निःशब्द संगीत की भाँति प्रकृति पर छायी हुई थी; वही मित्र—समाज था । वही मनोरंजन के सामान थे । मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ करुण क्रन्दन और अश्रु—प्रवाह था ।

3

शहर से कई मील दूर एक छोटे—से घर में एक बूढ़ा और बुढ़िया अंगीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे । बूढ़ा नारियल पीता था और बीच—बीच में खाँसता था । बुढ़िया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी । एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी । घर

में न चारपाई थी, न बिछौना । एक किनारे थोड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी । इसी कोठरी में एक चुल्हा था । बुढ़िया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी । बूढ़ा रस्सी बट कर बाजार में बेच आता था । यही उनकी जीविका थी । उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसते । उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था । मौत द्वार पर खड़ी थी, रोने या हँसने की कहाँ फुरसत! बुढ़िया ने पुछा-कल के लिए सन तो है नहीं, काम क्या करोगे?

‘जा कर झगडू साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा?’

उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं, और उधार कैसे देगा?’

‘न देगा न सही । घास तो कहीं नहीं गयी । दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा?’

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज़ दी-भगत, भगत, क्या सो गये? ज़रा किवाड़ खोलो।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये । एक आदमी ने अन्दर आकर कहा-कुछ सुना, डॉक्टर चड्ढा बाबू के लड़के को साँप ने काट लिया ।

भगत ने चौंक कर कहा-चड्ढा बाबू के लड़के को! वही चड्ढा बाबू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं?

‘हाँ-हाँ वही । शहर में हल्ला मचा हुआ है । जाते हो तो

जाओ, आदमी बन जाओगे ।’

बूढ़े ने कठोर भाव से सिर हिला कर कहा— मैं नहीं जाता! मेरी बला जाय! वही चड़्ढा है। खूब जानता हूँ । भैया लेकर उन्हीं के पास गया था । खेलने जा रहे थे । पैरों पर गिर पड़ा कि एक नजर देख लीजिए; मगर सीधे मुँह से बात तक न की । भगवान बैठे सुन रहे थे । अब जान पड़ेगा कि बेटे का गम कैसा होता है । कई लड़के हैं?

‘नहीं जी, यही तो एक लड़का था । सुना है, सबने जवाब दे दिया है ।’

‘भगवान बड़ा कारसाज़ है । उस बखत मेरी आँखें से आँसू निकल पड़े थे, पर उन्हें तनिक भी दया न आयी थी । मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता ।’

‘तो जाओगे? हमने जो सुना था, सो कह दिया ।’

‘अच्छा किया—अच्छा किया । कलेजा ठंडा हो गया आँखें ठंडी हो गयीं । लड़का भी ठंडा हो गया होगा! तुम जाओ । आज चैन की नींद सोऊँगा । (बुढ़िया से) ज़रा तम्बाकू ले ले! एक चिलम और पीऊँगा । अब मालूम होगा लाला को! सारी साहबी निकल जायगी, हमार क्या बिगड़ा । लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया? जहाँ छः बच्चे गये थे, वहाँ एक और चला गया, तुम्हारा तो राज सूना हो जाएगा । उसी के वास्ते सबका गला दबा—दबा कर जोड़ा था न । अब क्या करोगे? एक बार देखने जाऊँगा पर कुछ दिन

बाद मिजाज का हाल पूछूँगा ।

आदमी चला गया । भगत ने किवाड़ बन्द कर लिये, तब चिलम पर तम्बाखू रख कर पीने लगा ।

बुढ़िया ने कहा—इतनी रात गए जाड़े—पाले में कौन जायगा ?
'अरे दोपहर ही होता तो मैं न जाता । सवारी दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता । भूल नहीं गया हूँ । पन्ना की सूरत आँखों में फिर रही है । इस निर्दयी ने उसे एक नज़र देखा तक नहीं । क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा ? खूब जानता था । चड्ढा भगवान नहीं थे, कि उनके एक निगाह देख लेने से अमृत बरस जाता । नहीं, खाली मन की दौड़ थी । अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा—क्यों साहब, कहिए, क्या रंग है ? दुनिया बुरा कहेगी, कहे; कोई परवाह नहीं । छोटे आदमियों में तो सब ऐब हैं । बड़ों में कोई ऐब नहीं होता, देवता होते हैं ।

भगत के लिए यह जीवन में पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पा कर वह बैठा रह गया हो । अस्सी वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ था कि साँप की खबर पाकर वह दौड़ न गया हो । माघ—पूस की अँधेरी रात, चैत—बैसाख की धूप और लू, सावन—भादों की चढ़ी हुई नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की । वह तुरन्त घर से निकल पड़ता था—निःस्वार्थ, निष्काम ! लेने—देने का विचार कभी दिल में आया नहीं । यह साधारण काम ही न था । जान का

मूल्य कौन दे सकता है? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मंत्रों ने जीवन-दान दे दिया था; पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर सुन कर सोने जा रहा है।

बुढ़िया ने कहा—तमाखू अँगीठी के पास रखी हुई है। उसके भी आज ढाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुढ़िया यह कह कर लेटी। बुढ़े ने कुप्पी बुझायी, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया। अन्त को लेट गया; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझों की भाँति रखी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज़ खो गयी है, जैसे सारे कपड़े गीले हो गये हैं या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे कोई उसके मन में बैठा हुआ उसे घर से निकालने के लिए कुरेद रहा है। बुढ़िया ज़रा देर में खर्राटे लेने लगी। बूढ़े बातें करते-करते सोते हैं और जरा-सा खट होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली, धीरे से किवाड़ खोले।

बुढ़िया ने पूछा — कहाँ जाते हो?

‘कहीं नहीं, देखता था कि कितनी रात है।’

‘अभी बहुत रात है, सो जाओ।’

‘नींद, नहीं आती।’

‘नींद काहे आवेगी? मन तो चड़्ढा के घर पर लगा हुआ है।’

‘चड़्ढा ने मेरे साथ कौन-सी नेकी कर दी है, जो वहाँ

जाऊँ? वह आ कर पैरों पड़े, तो भी न जाऊँ।’

‘उठे तो तुम इसी इरादे से ही?’

‘नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे काँटे बोये, उसके लिए फूल बोता फिरूँ।’

बुढ़िया फिर सो गयी। भगत ने किवाड़ लगा दिए और फिर आकर बैठा। पर उसके मन की कुछ ऐसी दशा थी, जो बाजे की आवाज कान में पड़ते ही उपदेश सुनने वालों की होती है। आँखें चाहे उपदेशक की ओर हों; पर कान बाजे ही की ओर होते हैं। दिल में भी बाजे की ध्वनि गूँजती रहती है। शर्म के मारे जगह से नहीं उठता। निर्दयी प्रतिघात का भाव भगत के लिए उपदेशक था, पर हृदय उस अभागे युवक की ओर था, जो इस समय मर रहा था, जिसके लिए एक-एक पल का विलम्ब घातक था।

उसने फिर किवाड़ खोले, इतने धीरे से कि बुढ़िया को खबर भी न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था, बोला—कैसे उठे भगत? आज तो बड़ी सर्दी है! कहीं जा रहे हो क्या?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ! देखता था, अभी कितनी रात है। भला, के बजे होंगे।

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, अभी थाने से आ रहा था, तो डॉक्टर चड्ढा बाबू के बंगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने

छू लिया है । साइत मर भी गया हो । तुम चले जाओ तो साइत बच जाय । सुना है, इक हजार तक देने को तैयार हैं ।

भगत-मैं तो न जाऊँ चाहे वह दस लाख भी दें । मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या है? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है ।

चौकीदार चला गया । भगत ने आगे पैर बढ़ाया । जैसे नशे में आदमी की देह अपने काबू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है जबान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था । मन में प्रतिकार था; पर कर्म मन के अधीन न था । जिसने कभी तलवार नहीं चलायी, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता । उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं ।

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था । चेतना रोकती थी, पर उपचेतना ठेलती थी । सेवक स्वामी पर हावी था ।

आधी राह निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया । हिंसा ने क्रिया पर विजय पायी-मैं यों ही इतनी दूर चला आया । इस जाड़े-पाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी? आराम से सोया क्यों नहीं? नींद न आती, न सही; दो-चार भजन ही गाता । व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया । चड़्ढा का लड़का रहे या मरे, मेरी बला से । मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिए मरूँ? दुनिया में

हजारों मरते हैं, हजारों जीते हैं। मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब!

मगर उपचेतन ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत कुछ मिलता-जुलता था-वह झाड़-फूँक करने नहीं जा रहा है; वह देखेगा, कि लोग क्या कर रहे हैं। डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा, किस तरह सिर पीटते हैं, किस तरह पछाड़े खाते हैं! वे लोग तो विद्वान होते हैं, सबर कर जाते होंगे! हिंसा-भाव को यों धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा।

इतने में दो आदमी आते दिखायी दिये। दोनों बातें करते चले आ रहे थे-चड़्ढा बाबू का घर उजड़ गया, वही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज पड़ी। उसकी चाल और भी तेज हो गयी। थकान के मारे पाँव न उठते थे। शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था, मानों अब मुँह के बल गिर पड़ेगा। इस तरह वह कोई दस मिनट चला होगा कि डाक्टर साहब का बँगला नज़र आया। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं; मगर सन्नाटा छाया हुआ था। रोने-पीटने के आवाज भी न आती थी। भगत का कलेजा धक-धक करने लगा। कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गयी? वह दौड़ने लगा। अपनी उम्र में वह इतना तेज कभी न दौड़ा था। बस, यही मालूम होता था, मानो उसके पीछे मौत दौड़ी आ रही है।

दो बज गये थे । मेहमान विदा हो गये । रोने वालों में केवल आकाश के तारे रह गये थे । और सभी रो-रो कर थक गये थे । बड़ी उत्सुकता के साथ लोग रहकर आकाश की ओर देखते थे कि किसी तरह सुबह हो और लाश गंगा की गोद में दी जाय ।

सहसा भगत ने द्वार पर पहुँच कर आवाज दी । डॉक्टर साहब समझे, कोई मरीज़ आया होगा । किसी और दिन उन्होंने उस आदमी को दुत्कार दिया होता; मगर आज बाहर निकल आये । देखा एक बूढ़ा आदमी खड़ा है—कमर झुकी हुई, पोपला मुँह, भौंहें तक सफ़ेद हो गयी थीं । लकड़ी के सहारे काँप रहा था । बड़ी नम्रता से बोले—क्या है भाई, आज तो हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत पड़ गयी है कि कुछ कहते नहीं बनता, फिर कभी आना । इधर एक महीना तक तो शायद मैं किसी भी मरीज को न देख सकूँगा ।

भगत ने कहा—सुन चुका हूँ बाबू जी, इसीलिए आया हूँ । भैया कहाँ हैं? ज़रा मुझे दिखा दीजिए । भगवान बड़ा कारसाज है, मुरदे को भी जिला सकता है । कौन जाने, अब भी उसे दया आ जाय ।

चड्ढा ने व्यथित स्वर से कहा—चलो, देख लो; मगर तीन-चार घंटे हो गये । जो कुछ होना था, हो चुका । बहुतेर झाड़ने-फूँकने वाले देख-देख कर चले गये ।

डॉक्टर साहब को आशा तो क्या होती । हाँ बूढ़े पर दया आ गयी । अन्दर ले गये । भगत ने लाश को एक मिनट तक देखा । तब मुस्करा कर बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, बाबू जी! यह नारायण चाहेंगे, तो आध घंटे में भैया उठ बैठेंगे । आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं । ज़रा कहारों से कहिए, पानी तो भरें ।

कहारों ने पानी भर-भर कर कैलाश को नहलाना शुरु किया पाइप बन्द हो गया था । कहारों की संख्या अधिक न थी, इसलिए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भर कर कहारों को दिया, मृणालिनी कलासा लिए पानी ला रही थी । बूढ़ा भगत खड़ा मुस्करा—मुस्करा कर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है । जब एक बार मंत्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलाश के सिर पर डाल देता और न-जाने कितनी बार भगत ने मंत्र फूँका । आखिर जब उषा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलीं तो कैलाश की भी लाल-लाल आँखें खुल गयी । एक क्षण में उसने अंगड़ाई ली और पानी पीने को माँगा । डॉक्टर चड्ढा ने दौड़ कर नारायणी को गले लगा लिया । नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलाश के सामने आँखों में आँसू-भरे पूछने लगी—अब कैसी तबियत है!

एक क्षण में चारों तरफ खबर फैल गयी । मित्रगण मुबारकबाद देने आने लगे । डॉक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे । सभी लोग भगत के

दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे; मगर अन्दर जा कर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहीं बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देन लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकल कर भरी।

यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले पहुँच जाऊँ!

जब मेहमान लोग चले गये, तो डॉक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुड़ढा न—जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ।

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी।

चड्ढा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना, पर ज़रा साफ हो जाने पर पहचान गया। एक बार यह एक मरीज़ को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज़ को देखने से इनकार कर दिया था। आज उस दिन कि बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पेरों पर गिर कर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ, उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है। उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब से जीवनपर्यन्त मेरे सामने रहेगा।



2-एक चरित्र

-पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

लेखक परिचय

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का जन्म राजनांदगांव के एक छोटे से कस्बे खैरागढ़ में 27 मई 1894 में हुआ। उनके पिता पुन्नालाल बख्शी खैरागढ़ के प्रतिष्ठित परिवार से थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा विक्टोरिया हाई स्कूल में हुई तथा बनारस हिन्दू कॉलेज से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने अध्यापन, संपादन, लेखन के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं- कुछ और कुछ, यात्री, नवरात्र, वे दिन, समस्या और समाधान, मेरा देश इत्यादि। उन्हें साहित्य सम्मलेन द्वारा सन् 1949 में साहित्य वाचस्पति की उपाधि से अलंकृत किया गया। इसके ठीक एक साल बाद वे मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मलेन के सभापति निर्वाचित हुए। सन् 1951 में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में, जबलपुर में पदुमलाल जी, जो 'मास्टरजी' के नाम से जाने जाते थे, उनका सार्वजनिक अभिवन्दन किया गया। सन् 1969 में सागर विश्वविद्यालय से द्वारिका प्रसाद मिश्र (मुख्यमंत्री) द्वारा डी.लिट. की उपाधि से उन्हें विभूषित किया गया। 18 दिसम्बर सन् 1971 को शासकीय डी.के.अस्पताल में उनका निधन हो गया।

प्रस्तुत रेखाचित्र 'एक चरित्र' ऐसे पहलवान के इर्द-गिर्द घूमता है जिसके लिए सभी स्पृहणीय वस्तुएँ

उपेक्षणीय थी क्योंकि उसकी सारी कामनाएँ एक तीतर में बद्ध थीं।

* * * * *

तरुणावस्था में प्रेम का उन्माद रोग तो सभी नवयुवकों को हो जाता है, पर सभी के जीवन में प्रेम की विलक्षण घटनाएँ नहीं होतीं। अधिकांश की प्रेम-भावना उनके गृह जीवन में ही समाप्त हो जाती है। अपने नगर में विशुद्ध प्रेम या ममता के यथार्थ रूप को मैंने एक व्यक्ति में पाया। वह पहलवान था। प्रतापगढ़ से आया था। सबसे पहले मैंने उसको रामबख्श भक्त के विश्राम-गृह में देखा। उसके शरीर की सुदृढ़ गठन देख कर सभी हठात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। उसमें जहाँ तेज था, वहाँ सरलता भी थी, उसमें जैसी शक्ति थी, वैसी सहनशीलता भी थी। क्रोध तो उसमें था ही नहीं। चिंता को वह जानता ही न था। ऐसे जान पड़ता था कि वह बिलकुल निर्द्वन्द, निर्विकार था।

वह चुपचाप चाय पी रहा था। उसी समय एक दुबले-पतले युवक ने आकर उसे खूब झिड़क कर कहा—‘वाह, उस्ताद, तुम यहाँ बैठे चाय पी रहे हो। मैं तुम्हें कितनी देर से खोज रहा हूँ, उठो।’

उसने नम्रतापूर्वक कहा—“चलता हूँ भैया, जरा आराम से चाय तो पी लूँ।” वह युवक उसके उत्तर से और भी क्रुद्ध हो गया। दोनों में विवाद-सा होने लगा। बात ही बात में उस दुबले-पतले युवक ने आवेश में आकर कहा ‘चलते हो या

यों ही बातें बनाओगे, ऐसा खींचकर थप्पड़ दूँगा कि फिर तुम बातें करना भूल जाओगे ।

उसकी यह अचिंतनीय बात सुनकर मैं हँस पड़ा । उसकी वह उक्ति सचमुच उपहासास्पद थी । कहाँ वह मच्छड़ और कहाँ वह हाथी । परन्तु उस दुर्बल युवक ने अपनी दुर्बलता का ज़रा भी विचार नहीं किया । वह सचमुच क्रोध से उठ खड़ा हुआ, मुझको हँसते देखकर वह कुछ सहम-सा गया और तब वह पहलवान भी हँसने लगा । फिर उसने कहा—‘चल भैया चल तुझसे लड़कर सचमुच नहीं जीत सकता ।’

इसके बाद रामबख्श की दुकान पर पहलवान से प्रायः प्रतिदिन ही भेंट हो जाती थी । मुझको यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता कि वह मान-अपमान, प्रशंसा-निंदा, किसी की भी परवाह नहीं करता था । वह सभी से हँसकर बातें करता था । सभी की बातें सुन लेता था और सभी के काम करने के लिए सदैव तत्पर रहता था । अपनी शक्ति के कारण वह निर्बलों के प्रति सहिष्णु था । उनके अत्याचारों तक को वह चुपचाप सह लेता था । उसके मुख पर सदैव प्रसन्नता बनी रहती थी ।

एक बार बाहर से एक प्रसिद्ध पहलवान आया । उसके साथ उसकी कुश्ती हुई । उसने उस पहलवान को पछाड़ दिया । लोगों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, परन्तु उसने उत्तर दिया—‘जो लड़ता है, वह कभी हारता है और कभी जीतता

है। इसमें न कोई प्रशंसा की बात है और न निंदा की ही। अगर मैं हार गया होता तो जान पड़ता है कि जगह-जगह तुम लोग मेरी निंदा करते-फिरते।’

उसकी यह बात सुनकर उसके सभी प्रशंसा करनी वाले चुप हो गये। कुछ को बुरा लगा पर वह निश्चिन्त होकर चाय पीने लगा।

एक दिन आकर उसने मुझसे कहा- ‘मास्टर साहब’ यह कागज तो देखिए। इसमें क्या लिखा है? मैंने उस कागज को पढ़ा। पढ़ने पर मालूम हुआ कि कप्तान साहब उस पर बहुत अप्रसन्न हो गए हैं। ऐसा जान पड़ता था कि वह नौकरी से हटा दिया जायेगा। सारी बातें जान लेने के बाद उसने उस कागज को फाड़ दिया और कहने लगा- ‘जितना काम मैं कर सकता हूँ उतना मैं करता ही हूँ। अगर मेरे अफसर संतुष्ट न हों तो मैं कर ही क्या सकता हूँ?’ यह कहकर उसने रामबख्शा से कहा- ‘रामबख्शा चाय दो’-और प्रसन्नचित होकर चाय पीने लगा।

दो-चार दिनों के बाद फिर पहलवान ने मुझको एक कार्ड दिखलाया। वह कार्ड उसके भाई ने देश से लिखवा कर भेजा था। उससे पता चला कि घर की स्थिति खराब हो गई है। उसके भाई को बड़ी चिंता है, वह कष्ट में है। वह चाहता है कि उसका भाई कुछ दिनों के लिए घर आ जाय और वहाँ आकर प्रबंध कर दे। पहलवान ने सब बातें सुन, मुझको इसका उत्तर लिख देने को कहा। उसने जो उत्तर लिखाया उसका मर्म यह था कि संसार में सभी जगह सुख

और दुःख है । हमें सुख भी होते हैं और दुःख भी । इतने दिनों तक हम सुख में थे, अब कुछ समय के लिए यदि दुःख भोगना पड़े तो इसमें कौन-सी अचरज की बात है । यह चिंता की बात नहीं! जैसी स्थिति है, तुम्हें वैसा ही काम करना चाहिए । यह उत्तर लिखा कर बड़ी निश्चिन्तता से उसने रामबख्श को चाय लाने के लिए कहा । फिर वह चाय पीने लगा ।

कुछ दिन और व्यतीत हो गए । इसके बाद भेंट होने पर उसने मुझसे कहा - 'मास्टर साहब, आपको फिर एक खत लिखना पड़ेगा । फिर एक नई विपत्ति आ गई है ।'

मैंने सहानुभूति के स्वर में पूछा - 'कैसी विपत्ति है?' उसने हँसकर कहा- मेरी माँ मृत्यु-शैय्या पर है । कौन जाने इस पत्र का उत्तर जाने तक वह जीवित रहेगी या नहीं?'

मैंने कहा- 'सचमुच यह बड़ी विपत्ति की बात है । आप छुट्टी लेकर घर चले जाइये और कम-से-कम माँ के अंतिम दर्शन तो कर लीजिए ।'

उसने कहा -यदि माँ का दर्शन मेरे भाग्य में रहता, तो गाँव से इतनी दूर अपने जीवन-निर्वाह के लिए आना ही क्यों पड़ता? क्या किया जाय! मेरे भाई वहीं हैं, वही मेरी माँ की सेवा करते होंगे । किसकी माँ, कब तक किसका साथ देगी? उसने मेरा पालन-पोषण कर इतना बड़ा बना दिया । अब मैं भटक रहा हूँ तो अपने भाग्य से । आप मेरे लिए कार्ड लिख दीजिए ।'

मैंने उसके कहने से जो कुछ लिखा, उसका सार यह

था-संसार में किसी के माता-पिता सदैव जीवित नहीं रहते, इसी लिए उसे यह सुनकर दुःख नहीं हुआ कि अब उसकी माता का अंतिम काल उपस्थित हो गया है। माँ का अंतिम दर्शन करना मेरे भाग्य में नहीं था।'

इसी प्रकार सभी भाँती की आपत्तियों को वह हँसते-हँसते टाल देता था। उसके लिए अर्थकष्ट तुच्छ था। मृत्यु एक स्वाभाविक घटना थी, जीवन एक खेल था। मुझको यही प्रतीत होता था कि काल के सभी आघात उस पर किसी प्रकार का प्रभाव डाल नहीं सकते। उसने मानो मृत्यु के विरुद्ध एक अभेद्य कवच पहन लिया था। सभी संकट उसके लिए नगण्य थे, सभी कष्ट उसके लिए उपेक्षणीय थे और सभी अवस्थाएँ उसके लिए अच्छी थीं। वह एक काम से हट कर दूसरे काम में लगा, पर उसे न हर्ष हुआ न विषादा। वह हेड कांस्टेबल बन गया, पर उसने अपनी दिनचर्या नहीं बदली। वह जैसे पहले रहता था वैसे अब भी रहने लगा। अफसरों की कृपा या अकृपा उसे विचलित नहीं करती थी। किसी प्रकार की बाधा या विघ्न उसके जीवन में क्षोभ ला ही नहीं सकते थे।

परन्तु एक दिन जब मैं प्रातः काल रामबख्श की दुकान में गया, तब मैंने उसको अत्यंत विषण्ण देखा। वह बिलकुल चुप बैठा था। किसी की ओर उसकी दृष्टि नहीं थी। उसके चहरे पर किसी गंभीर वेदना का भाव झलक रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानों वह अपना सर्वस्व खो बैठा है, मानों

अब उसमें कोई उमंग नहीं, कोई ललसा, उत्साह या तेज नहीं है।

मैंने घबराहट के साथ पूछा - 'पहलवानजी आप कुशलपूर्वक तो है न?'

उसने नैराश्यपूर्ण स्वर में उत्तर दिया- 'जी हाँ, मैं अच्छी तरह हूँ।'

मैंने फिर पूछा - 'घर में सब अच्छी तरह से तो हैं? कोई बुरी खबर तो नहीं आई है?'

उसने उत्तर दिया - 'सब अच्छी तरह हैं। क्या कोई बुरी खबर आएगी?'

मैंने कहा - 'पर आज आप बहुत उदास हैं? क्या बात हुई? कोई झंझट-बखेड़ा तो नहीं हुआ?'

उसने कहा- 'कोई बात नहीं हुई है।'

उसने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा- 'क्या कहूँ मैं तो अपना सर्वस्व खो बैठा हूँ।'

मैंने विस्मित होकर पूछा- 'क्या बात हुई?'

वह कहने लगा- 'मेरा तीतर न जाने कहाँ चला गया है? न जाने कौन जानवर उसे उठा ले गया, कुछ पता नहीं चलता। उसका पिंजड़ा खाली है। सभी जगह ढूँढ डाला। कितने ही वर्षों से वही मेरा साथी है। भगवान जाने वह कहाँ है? मैं इसी चिंता में व्याकुल हूँ।'

मैंने उसे सांत्वना देते हुए कहा- 'मिल जाएगा, इधर-उधर कहीं होगा, आप घबराइए मत।'

मैने फिर रामबख्श को चाय लाने के लिए कहा, परन्तु उसने कहा—‘मास्टर साहब, मैं आज चाय नहीं पी सकता । मैं आज काम पर नहीं गया हूँ । मेरा मन बड़ा अधीर हो रहा है।’

यह कहकर वह उठकर चला गया । मैं भी चाय पीकर घर चला गया । फिर खा—पीकर मैं स्कूल चला गया । अपने ही कार्य में व्यग्र रहने के कारण मुझे उस पहलवान के दुःख की बात याद ही नहीं रही । एक बजे जब छुट्टी हुई तब दौड़ता हुआ वह पहलवान स्कूल आया । ज्यों ही उसने मुझको देखा त्यों ही चिल्ला उठा—‘मास्टर साहब, मिल गया । मेरा तीतर मिल गया । मैं आपको खबर देने आया हूँ ।’

मैंने देखा —उसके चहरे पर आनंद की अपूर्व ज्योति थी । उसने अपनी अमूल्य—निधि पा ली थी । उसे अपना खोया धन मिल गया था । तब उसे क्यों न आनंद होगा? संसार की सभी स्पृहणीय वस्तुओं को उसने उपेक्षणीय समझ लिया था । उसकी सारी कामनाएँ एक तीतर में बद्ध थीं ।



3-रीढ़ की हड्डी

- जगदीशचंद्र माथुर

लेखक परिचय

हिन्दी एकांकी-कला के परिष्कार में जिन कलाकारों ने महत्वपूर्ण योग दिया है, उनमें जगदीशचंद्र माथुर जी का विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म 16 जुलाई 1917, खुर्जा, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं-कोणार्क, भोर का तारा, ओ मेरे सपने इत्यादि। उनका निधन सन् 1978 ई. में हुआ। उनका पहला एकांकी 'मेरी बांसुरी' 1936 ई. में छपा था। तबसे उन्होंने कुछेक सुन्दर एकांकी दिए हैं। यद्यपि परिमाण में उनका एकांकी-साहित्य सीमित ही है, किन्तु उससे निःसंदेह हिन्दी नाटक-कथा के विकास में महत्वपूर्ण योग मिला है। उनका 'भोर का तारा' एकांकी-संग्रह ऐतिहासिक महत्व रखता है।

माथुर जी के सबसे अधिक सफल एकांकि सामाजिक हैं। उनमें उन्होंने आधुनिक समाज की छोटी-बड़ी विभिन्न समस्याओं पर व्यंग कसे हैं।

माथुर जी ने सुधारवादी नाटक लिखने की पुरानी शैली में परिमार्जन किया है। उन्होंने अपने एकांकी-साहित्य में पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व की एवं दृष्टिकोण को रखने के साथ-साथ नाटकीयता को बनाये रखने की आवश्यकता पर जोर दिया। फलतः उनके अधिकांश नाटक कलाहीन न होकर इतने सशक्त हो गए हैं कि आज वे माथुर जी का पर्याय ही बन गए हैं।

‘रीढ़ की हड्डी’ उनका एक बहुत विख्यात एकांकी है, जो साहित्यिकता, मंच एकांकी- कला की दृष्टि से एक सशक्त रचना है। विद्यार्थी-जीवन के झूठ-फरेब तथा शिष्ट कहलाने वाले समाज के आंतरिक खोखलेपन पर यह एकांकी सबल व्यंग करता है। साथ ही नारी की बेबसी और सामाजिक स्थिती का इसमें बहुत अच्छा चित्रण हुआ है।

* * * * *

पात्र परिचय

उमा : लड़की

रामस्वरुप : लड़की का पिता

प्रेमा : लड़की की माँ

शंकर : लड़का

गोपालप्रसाद : लड़के का बाप

रतन : नौकर

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अंदर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है वह अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।]

बाबू : अबे, धीरे-धीरे चल। . . अब तख्त को उधर मोड़ दे . . . उधर । . . बस, बस।

नौकर : बिछा दूँ, साहब?

बाबू : (जरा तेज़ आवाज़ में) और क्या करेगा? परमात्मा के

यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या? . . .
बिछा दूँ साब . . .! और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर : (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही ।

बाबू : हँसता क्यों है? ... अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं । कलसों से नहाता था लोटों की तरह । यह तख्त क्या चीज है? . . .उसे सीधा कर . . . यों.. ..हाँ, बस और सुन, बहू जी से दरी मांग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए ।.. .. चदर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही ।

[नौकर जाता है । बाबूसाहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं । एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते हैं । कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं । सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं । गन्दुमी रंग, छोटा कद । चेहरे और आवाज से ज़ाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त है । उसके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है- खाली हाथ । बाबू साहब रामस्वरूप-दोनों की तरफ देखते हैं... ।]

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गई? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में.. ..

रामस्वरूप : धोती?

प्रेमा : हाँ अभी तो बदलकर आए हो, और फिर न जाने किसलिए....

रामस्वरूप : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने है?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन ।

रामस्वरुप : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट्, लगी है क्या? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चदर आई है, उसे माँग लाअबे तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ! उल्लू कहीं का ।

प्रेमा : अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे हैं न—उन्हीं में से एक चदर उठा ला ।

रतन : और दरी?

प्रेमा : दरी यहीं तो रखी है, कोने में । वह पड़ी तो है ।

रामस्वरुप : (दरी उठाते हुए) और बीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला और सितार भी ।जल्दी जा ।

[रतन जाता है । पति—पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं ।]

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाडली बेटी तो मुहँ फुलाए पड़ी है ।

रामस्वरुप : मुँह फुलाए!.. और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो? जैसे—तैसे करके वे लोग पकड़ में आए हैं । अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ? सारे जतन करके तो हार गई । तुम्हीं ने उसे पढा—लिखाकर इतना सिर चढा रक्खा है । मेरी समझ में तो यह पढाई—लिखाई के जंजाल आते नहीं । अपना ज़माना अच्छा था । 'आ, ई' पढ ली, गिनती सीख ली

और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बातें लिखीं हैं— ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं।

रामस्वरूप : ग्रामोफोन बाजा होता है न?

प्रेमा : क्यों?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो ; और दुसरा परमात्मा का बनाया हुआ ; उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी ! तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो क्या हुआ?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि ज़रा ठीक-ठीक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुंदर हो, बिना टीम-टाम के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रक्खा था। पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जन्म की नफरत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गई। भई, मैं तो बाज़ आई तुम्हारी इस लड़की से।

रामस्वरूप : न जाने कैसा इसका दिमाग है। वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारोबार चलता है।

प्रेमा : अरे, मैंने तो पहले ही कहा था । इंटरेंस ही पास करा देते-लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती ! पर तुम तो....

रामस्वरुप : (बात काटकर) चुप, चुप !.. .. (दरवाजे में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों का सामने ज़िक्र और ढंग से होगा, मगर तुम अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी!

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी । जैसी तुम्हारी मर्जी हो, करना । बस, मुझे तो मेरा काम बता दो ।

रामस्वरुप : तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो । न सही पौडर, वैसे कौन बुरी है! पान लेकर भेज देना उसे, और नाश्ता तो तैयार है न? (रतन का आना) आ गया रतन । इधर ला, इधर । बाजा नीचे रख दे । चद्दर खोल । ... पकड़ तो जरा इधर से ।

[चद्दर बिछाते हैं ।]

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज़्यादा खाएँगे नहीं, कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं । फल रखे ही हैं । चाय तैयार है, और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं ।

रामस्वरुप : क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है! जानती हो कि मक्खन-वाले की दुकान दूर है; पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं ।

अब बताओ, रतन मक्खन लाए कि यहाँ का काम करे । दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए, सो नखरों के मारे ...

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज़्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही । बाजा-सितार आ ही गया । नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में 'ट्रे' में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी । एकाध चीज़ खुद ले आना । इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आएगा । दो आदमी ही तो हैं?

रामस्वरुप : हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है । देखो, उमा से कह देना कि ज़रा करीने से आए । ये लोग ज़रा ऐसे ही हैं । गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर । खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी न हो ।

प्रेमा : और लड़का?

रामस्वरुप : बताया तो था तुम्हें । बाप सेर है तो लड़का सवा सेर । बी.एस-सी. के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है मेडिकल कालेज में । कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा । क्या करूँ, मजबूरी है । मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी ...

रतन : (जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबूजी, बाबूजी!

रामस्वरूप : क्या है?

रतन : कोई आते हैं ।

रामस्वरूप : (दरवाजे से बाहर झाँकर जल्दी मुँह अंदर करते हुए) अरे, ऐ प्रेमा, वे आ भी गए । (नौकर पर नज़र पड़ते ही) अरे, तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ! गया नहीं मक्खन लाने?... सब चौपट कर दिया । ... अबे, उधर से नहीं, अंदर के दरवाजे से जा (नौकर अंदर आता है).... और तुम जल्दी करो प्रेमा । उमा को समझा देना, थोड़ा-सा गा देगी ।

(प्रेमा जल्दी से अंदर की तरफ आती है । उसकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है ।)

प्रेमा : ऊँह, यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त ।

रामस्वरूप : तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ । जल्दी ।

[प्रेमा जाती है । बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं ।
किवाड़ों पर दस्तक ।]

रामस्वरूप : हँ हँ हँ । आइए, आइए ... हँ हँ हँ ।

[बाबू गोपालप्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना । आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय हैं । उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है । आवाज़ पतली है और खिसियाहट-भरी । झुकी कमर इनकी खासियत है ।]

रामस्वरूप : (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए इधर ...

[बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ती है।]

रामस्वरूप : यह बेंत! ... लाइए, मुझे दीजिए। (कोने में रख देते हैं सब बैठते हैं।) हँ हँ... मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई?

गोपालप्रसाद : (खँखारकर) नहीं। ताँगेवाला जानता था। ... और फिर हमें तो यहाँ आना ही था; रास्ता मिलता कैसे नहीं!

रामस्वरूप : हँ हँ हँ, यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी।

गोपालप्रसाद : अरे नहीं साहब। जैसा मेरा काम, वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप : हँ हँ हँ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके... हँ हँ हँ—सेवक ही हैं। हँ हँ! (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकरबाबू, कितने दोनों की छुट्टियाँ हैं?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप : तो आपका कोर्स खत्म होने में तो अब साल-भर रहा होगा?

शंकर : जी, यही कोई साल-दो साल।

रामस्वरूप : साल-दो साल!

शंकर : हाँ, हाँ, हाँ...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता

हूँ ...

गोपाप्रसाद : बात यह है, साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख!

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गोपालप्रसाद : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में देर-सी बालाई आती थी और अकेले दो आने की हज़म करने की ताकत थी और अब तो बहुतेरे खेल वगैरा भी होते हैं स्कूल में। तब न वॉलीबाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिंटन। बस, कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

[शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।]

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! उस ज़माने की बात ही दूसरी थी। हँ... हँ!

गोपालप्रसाद : (जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठा कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे! जनाब मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेज़ी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम.ए. भी मुकाबला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गोपालप्रसाद : माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है ।

रामस्वरूप : हैं हैं हैं! ... जी हाँ, वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना था, रंगीन जमाना! हैं हैं हैं ।

[शंकर भी हीं-हीं करता है ।]

गोपालप्रसाद : (एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए) अच्छा तो साहब, फिर 'बिज़नेस' की बातचीत हो जाय ।

रामस्वरूप : (चौंकर) बिजनेस ... बिज... (समझकर) ओह ... अच्छा, अच्छा! लेकिन ज़रा नाशता तो कर लीजिए ।

[उठते हैं ।]

गोपालप्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ करते हैं?

रामस्वरूप : हैं ... हैं... हैं! तकल्लुफ किस बात का! हैं-हैं! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाए । वरना मैं किस काबिल हूँ । हैं - हैं! ... माफ कीजिएगा जरा, अभी हाज़िर हुआ ।

[अंदर जाते हैं]

गोपालप्रसाद : (थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में) आदमी तो भला है, मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती । पता चले, लड़की कैसी है ।

शंकर : जी ... (कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।)

गोपालप्रसाद : क्यों, क्या हुआ?

शंकर : कुछ नहीं ।

गोपालप्रसाद : झुककर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आए हो, कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर कि 'बैकबोन' ...

[इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए । ट्रे मेज़ पर रख देते हैं ।]

गोपालप्रसाद : आखिर आप माने नहीं!

रामस्वरूप : (चाय प्याले में डालते हुए) हँ हँ हँ! आपको विलायती चाय पसंद है या हिंदुस्तानी?

गोपालप्रसाद : नहीं, नहीं, साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए । और ज़रा चीनी ज्यादा डालिएगा । मुझे तो भाई, यह नया फैशन पसंद नहीं । एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाए तो ज़ायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं । (प्याले पकड़ाते हैं ।)

शंकर : (ख़खारकर) सुना है, सरकार अब ज़्यादा चीनी लेनेवालों पर 'टैक्स' लगाएगी ।

गोपालप्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ । सरकार जो चाहे सो कर ले; पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए ।

रामस्वरूप : (शंकर को प्याला पकड़ाते हुए) वह क्या?

गोपालप्रसाद : ख़ूबसूरती पर टैक्स! (रामस्वरूप और शंकर

हँस पड़ते हैं) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है, जनाब कि देने वाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैंडर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है!

रामस्वरुप : (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह! खूब सोचा आपने! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह सवाल कभी उठता भी न था। (तश्तती गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं।) लीजिए!

गोपालप्रसाद : (समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

रामस्वरुप : (शंकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है, शंकर बाबू?

शंकर : किस मामले में?

रामस्वरुप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए?

गोपालप्रसाद : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरुप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरा लगाए, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम आप मान भी जायँ, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा ।

गोपालप्रसाद : देखना क्या? जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए ।

रामस्वरूप : हैं-हैं, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है । हैं-हैं!

गोपालप्रसाद : और जायचा (जन्म-पत्र) तो मिल ही गया होगा?

रामस्वरूप : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है! ठाकुरजी के चरणों में रख दिया। बस खुद-ब-खुद मिला हुआ समझिए ।

गोपालप्रसाद : यह ठीक कहा है आपने, बिल्कुल ठीक (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न?

रामस्वरूप : (चौंककर) क्या?

गोपालप्रसाद : यही पढाई-लिखाई के बारे में । ... जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढी-लिखी लड़की नहीं चाहिए । मेम-साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को । बस, हद-से-हद मेट्रिक होनी चाहिए ... क्यों शंकर?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं ।

रामस्वरूप : नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता ।

गोपालप्रसाद : और क्या साहब! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़के को बी.ए., एम.ए. तक

पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है? अरे, मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेज़ी अखबार पढ़ने लगीं और 'पालिटिक्स' वगैरह बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं; शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप : जी हाँ, मर्द के दढ़ी होती है, औरत के नहीं। हँ... हँ... हँ!

[शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गंभीर हो जाते हैं।]

गोपालप्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीज़ों में से एक है।

रामस्वरूप : (शंकर से) चाय और लीजिए!

शंकर : धन्यवाद ! पी चुका।

रामस्वरूप : (गोपालप्रसाद से) आप?

गोपालप्रसाद : बस साहब, यह खत्म ही कीजिए!

रामस्वरूप : आपने तो कुछ खाया नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताएँ, वह मक्खन।

गोपालप्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना नहीं था; और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ ... हँ ... (मेज़ को एक तरफ सरका देते हैं)।

फिर अंदर के दरवाजे की तरफ मुँह कर ज़रा ज़ोर से) अरे, ज़रा पान भिजवा देना ... ! ... सिगरेट मँगवाऊँ?

गोपालप्रसाद : जी नहीं ।

[पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है । सादगी के कपड़े, गर्दन झुकी हुई । बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं]

रामस्वरूप : हँ ... हँ ! ... यही, ... हँ ...हँ, आपकी लड़की है । लाओ बेटी, पान मुझे दो ।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है । उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रक्खा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है । बाप-बेटे दोनों चौंक उठते हैं ।]

गोपालप्रसाद और शंकर : (एकसाथ) चश्मा!!

रामस्वरूप : (ज़रा सकपकाकर)– जी, वह तो वह ... पिछले महीने में इसकी आँखें दुखने लगी थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है ।

गोपालप्रसाद : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न!

गोपालप्रसाद : हूँ (संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी!

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ, उमा, उस तख्ते पर, अपने बाजे-वाजे के पास ।

[उमा बैठती है]

गोपालप्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है! ... हाँ, कुछ गाना- बजाना सीखा है?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा, एकाध गीत सितार के साथ।

[उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झोंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।]

रामस्वरूप : क्यों, क्या हुआ? गाने को पूरा करो, उमा!

गोपालप्रसाद : नहीं, नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

[उमा सितार रखकर अंदर जाने को उठती है।]

गोपालप्रसाद : अभी ठहरो बेटा।

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो, उमा! (उमा बैठती है।)

गोपालप्रसाद : (उमा से) तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी सीखी है?

(उमा चुप।)

रामस्वरूप : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। वह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है; और वह दीवार पर भी।

गोपालप्रसाद : हूँ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई

वगैरा?

रामस्वरूप : सिलाई—तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी। हँ... हँ... हँ... ।

गोपालप्रसाद : ठीक!... लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम—विनाम भी जीते हैं?

[उमा चुप । रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं । लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाए । गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं ।]

रामस्वरूप : जवाब दो, उमा! (गोपालप्रसाद से) हँ हँ, ज़रा शर्माती है । इनाम तो इसने...

गोपालप्रसाद : (ज़रा रुखी आवाज़ में) ज़रा इसे भी तो मुहँ खोलना चाहिए ।

रामस्वरूप : उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं । ज़वाब दो न!

उमा : (हल्की लेकिन मजबूत आवाज़ में) क्या जवाब दूँ, बाबूजी! जब कुर्सी—मेज़ बिकती है, तब दुकानदार कुर्सी—मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ़ खरीदार को दिखला देता है। पसंद आ गई तो अच्छा है, वरना ...

रामस्वरूप : (चौंककर खड़े हो जाते हैं ।) उमा, उमा!

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए, बाबूजी! ... ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आए हैं, इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़—बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख—भालकर खरीदते हैं?

गोपालप्रसाद : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा : (तेज़ आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और ज़रा अपने इस साहबजादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से क्यों भगाए गए थे!

शंकर : बाबूजी, चलिए।

गोपालप्रसाद : लड़कियों के होस्टल में? ... क्या तुम कालेज में पढ़ी हो?

[रामस्वरूप चुप]

उमा : जी हाँ, मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत-अपने मान का खयाल तो है, लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे!

रामस्वरूप : उमा! उमा ...!

गोपालप्रसाद : (खड़े होकर गुस्से से) बस, हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया है। आपकी लड़की बी.ए. पास है, और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए, मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। (छड़ी दूँढ़कर उठाते हैं।) बी.ए. पास? ओफ़फ़ोह! गज़ब हो जाता

है! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो ...

(दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।)

उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए! लेकिन घर जाकर ज़रा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—यानी बैकबोन, बैकबोन ...

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।]

प्रेमा : उमा, उमा ... रो रही है?

[यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।]

रतन : बाबूजी, मक्खन!

[सब रतन की तरफ देखते हैं और परदा गिरता है।]



4-संपादन में नया प्रतिमान रचने वाले - 'रवीन्द्र कालिया'

-चित्रा मुद्गल

लेखक परिचय

चित्रा मुद्गल का जन्म 10 दिसंबर, 1944 को चेन्नई में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा मुंबई में हुई। चित्रा जी की रुचि केवल लेखन में नहीं रही, अपितु उन्होंने समाज-सेवा में भी रुचि ली। चित्रा मुद्गल का सम्बन्ध आन्दोलन-आधारित संगठनों से भी रहा है। वह सामाजिक परिवर्तन की पक्षधर हैं और उनका मानना है कि ऐसे परिवर्तन में आन्दोलन का महत्व असंदिग्ध है। चित्रा मुद्गल हिन्दी साहित्य जगत् में, अपने उपन्यासों के आने से बहुत पूर्व ही कहानियों के माध्यम से अपनी पहचान बना चुकीं थीं। हिन्दी कहानीकारों में चित्रा मुद्गल अग्रिम पंक्ति में स्थान रखती हैं। अब तक उनके तेरह कहानी-संग्रह निकल चुके हैं। चार बालकथा-संग्रह, पाँच सम्पादित पुस्तकें और दो वैचारिक संकलन इनके खाते में हैं। अब तक इनके तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इनके नाम हैं -1. गिलिगड्डु (2002), 2. एक जमीन अपनी (1990), 3. आवां (1999)। इन्होंने कहानियाँ एवं संस्मरणों की रचना भी की है।

चित्रा जी को उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान का 'साहित्य-भूषण' सम्मान भी प्राप्त हुआ है तथा इन्हें दिल्ली अकादमी का 'साहित्यकार सम्मान' भी मिल चुका है। इन

सभी के पूर्व इन्हें राजभाषा विभाग, बिहार ने भी सम्मानित किया था ।

* * * * *

चार जनवरी की चढ़ती दोपहर— सुबह के नियमित कामों से निबटकर जब मैंने घर के किसी भी कोने में पड़े रहने वाले मोबाइल फोन की सुध ली तो मिस्ड कॉल देखकर मैंने एस.एम.एस पर नज़र डाली । अनेक संदेशों के बीच ममता का नाम देख उसके भेजे संदेश पर निगाह पड़ी । संदेश पढ़कर जी धक्क से रह गया । ‘गंगाराम, इमरजेंसी, नो होप ।’

अस्पताल जाने से चिढ़ थी रवींद्र कालियाजी को । अपने छोटी-मोटी शारीरिक व्याधियों का इलाज वे स्वयं कर लिया करते थे । होम्योपैथिक दवाइयाँ खाने से मैं स्वयं बचती रही हूँ । चाहे गले की परेशानी हो या सूखी खाँसी थी या लिखते-लिखते कंधों के दर्द की । अनेकों परिचित होम्योपैथिक डॉक्टरों में से जो सबसे पहले नाम याद आता वह रवींद्र कालिया का होता । धैर्य के साथ वे अस्वस्थता के सारे लक्षण जानना चाहते और टेलीफोन रख देते यह कहकर कि आधे घंटे बाद मैं तुम्हें फोन कर दवा लिखवा दूँगा । ठीक आधे घंटे बाद फोन आ जाता और वे मुझे दवाइयाँ लिख लेने के लिए कहते । कौन-सी देशी चल सकती है, कौन-सी जर्मनी की ।

अवध चेताते । नीम हकीम खतरे जान । अच्छा

डॉक्टर बना रखा है कालिया को । मगर यह बात अवध भी जानते थे । उनकी दवाइयों ने मुझे कष्टों से मुक्ति दी है । ममता ने बताया था । दवाइयाँ रवि को खूब याद रहती हैं । मगर वे लक्षणों के अनुसार होम्यौपैथ के पोथे खोल, बिना अध्ययन किए दवा नहीं बताते तुम्हें ।

एक समय रवींद्र कालिया को ज्योतिष के अध्ययन का शौक चर्चाया । डूब गए ज्योतिष पढ़ने में । पूछा एक बार तुम्हारी जन्मतिथि क्या है चित्रा ! जन्मतिथि मैंने बता दी । बोले यह नहीं, असली वाली बताओ । असली वाली ही बता रही हूँ । बोले, जब तुम्हारी मित्र ममता अपनी असली जन्मतिथि नहीं बताती तो तुम कैसे अपनी जन्मतिथि सही बता सकती हो! खूब हँसे सुनकर अवध और मैं । अवध ने कहा, दरअसल वह खुद अपनी असली जन्मतिथि गलत लिखता है । ममता की जन्मतिथि एकदम सही है । ममता झूठ नहीं बोलती। जाने कैसे फँस गई इस घनचक्कर के चक्कर में ... ।

ज्योतिष में उनकी दिलचस्पी हुई कैसे, पूछे बिना नहीं रह पाई तो जवाब मिला लिखने पढ़ने का धंधा मंदा चल रहा है इन दिनों । रायल्टी देने को प्रकाशक तैयार नहीं । न हुआ तो प्रेस बंद करके ज्योतिषाचार्य का बोर्ड लटका गुज़र-बसर की सोच ली जाएगी । ममता आचार्यत्व की पराकाष्ठा पर पहुँच ही गई है । कोई छात्र नाराज़गी जताने माथे पर पत्थर फेंक देता है तो वह अखबारों की सुखियाँ बन

जाती है । गलती से पत्थर कहीं आँख से जा लगता तो परिणाम सोचकर मैं सिहर उठाता हूँ ।

स्मरण करने की कोशिश करती हूँ, रवींद्र कालिया से मेरी पहली मुलाकात कब हुई थी । रवींद्र कालिया से मेरी पहली मुलाकात टाइम्स ऑफ इंडिया की बिल्डिंग में हुई थी थर्ड फ्लोर पर । करीब 51-52 साल पहले । उस समय वे 'धर्मयुग' में थे । मैं अवध से मिलने गई थी, तो अवध ने ही बताया कि 'वो देखो कालिया तुम्हें कैसे उचक-उचक कर देख रहा है । बहुत डायनेमिक कथाकार है । मैं तुम्हें उससे मिलवाऊँगा' लेकिन उस दिन शायद उनसे मुलाकात नहीं हो पाई । मैंने पत्र-पत्रिकाओं में उनके चित्र देखे थे और मन-ही-मन उन चित्रों से उनका मिलान करने लगी थी ।

कह सकती हूँ कि रवींद्र और ममता कालिया के साथ हमारी 51-52 साल पुरानी पारिवारिक प्रगाढ़ता रही है । वह दौर अलग था । पत्रकारिता में धर्मयुग स्कूल का डंका बजता था । इस स्कूल ने बड़े-बड़े सितारा पत्रकार और संपादक दिए । चाहे वे कन्हैयालाल नंदन हों, विश्वनाथ सचदेव हों, गणेश मंत्री हों, उदयन शर्मा हों, एस.पी सिंह हों या रवींद्र कालिया । नई कहानी आंदोलन में जिस तरह मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव की तिकड़ी थी, उसी तरह साठोत्तरी पीढ़ी में ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया की तिकड़ी रही । इन तीनों में ज्ञानरंजन सबसे अच्छे कहानीकार और संपादक हुए, उन्होंने 'पहल'

जैसी पत्रिका निकाली, काशीनाथ सिंह बड़े कहानीकार और संस्मरणकार रहे तो रवींद्र कालिया अच्छे कहानीकार के साथ-साथ स्टार संपादक हुए। 'धर्मयुग' छोड़ने के बाद वे इलाहाबाद चले गए और 'वर्तमान साहित्य' का कहानी महाविशेषांक निकालकर अपनी क्षमता का लोहा मनवा लिया। उनके संपादन की अपनी शैली थी। इसकी झलक उनके द्वारा संपादित पत्रिकाओं 'वर्तमान साहित्य', 'वागर्थ', 'नया ज्ञानोदय' और 'गंगा-यमुना' साप्ताहिक में देखी जा सकती है।

इन तमाम पत्रिकाओं की शुरुआत चाहे जिसने की, लेकिन रवींद्र कालिया ने अपने संपादन में इन सभी पत्रिकाओं को नया जीवन दे दिया। अपने संपादकत्व में उन्होंने नई-से-नई कथा पीढ़ी को स्टार का रुतबा दिया लेकिन वरिष्ठ रचनाकारों को भी पर्याप्त सम्मान के साथ इन पत्रिकाओं से जोड़े रखा। उन्होंने नई पीढ़ी को पैदा ही नहीं किया, बल्कि पुरानी पीढ़ी को भी स्टार बनाया। जब वे दिल्ली 'नया ज्ञानोदय' के संपादक बनकर आए तो पत्रिका में नई पीढ़ी की प्रतिभा का विस्फोट साफ-साफ दिखा और उन्होंने उसे बहुत जतन से सँजोया। अपने संपादन में उन्होंने अपनी निजी विचारधारा और प्रतिबद्धता को आड़े नहीं आने दिया और न ही नई पीढ़ी के लिए किसी तरह का बाड़ा बनाया। 'खुदा सही सलामत है' के रचनाकार ने अपने रचनाकार की स्वायत्तता को बरकरार रखते हुए नए लोगों को

पूरी स्वतंत्रता दी। उन्होंने अपने समकालीन संपादकों की तरह संपादन में किसी तरह के फार्मूले नहीं अपनाए न ऐसी कोई बाध्यता उत्पन्न की कि ऐसा लिखो तभी हमारे यहाँ छपने में सुविधा होगी।

पीछे मुड़कर देखती हूँ तो याद आता है कि ममता को मैंने तस्वीरों से बाहर कब देखा था लेकिन जब देखा तो बहुत गहरे महसूस किया कि रवींद्र ममता की पहली मोहब्बत थे और आखिरी भी। ये दोनों जैसे एक-दूसरे के लिए बने थे लेकिन मैं यह नहीं कह सकती कि खिलंदड़े, मनमौजी और साहित्य में खलबलियों को निर्मित करने वाले रवींद्र की पहली मोहब्बत भी ममता ही थीं। मुझे एक शाम याद आती है माहिम के घर की। जब भी हम लोग ममता और रवींद्र कालिया के घर जाते तो ममता कभी भी हमें बिना खाना खिलाए नहीं आने देती थीं। जब मैं अवध उनके घर पहुँचे तो उसी समय रमेश उपाध्याय भी आ गए। ममता ने रसोई में देखा तो थोड़ी-सी अरबी रखी हुई थी। लोग इतने थे कि उतनी अरबी से काम नहीं चल सकता था। हम लोगों ने कहा कि चलकर बाज़ार से थोड़ी और अरबी ले आएँ। सब लोग बाज़ार जाने को तैयार थे, लेकिन रवींद्र कालिया टस-से-मस न हुए। बोले-यह ममता की टेरिटेरी है और मैं उसमें हस्तक्षेप नहीं करता।

खैर, ममता ने उस दिन उतनी ही अरबी से सबके लिए रसेदार सब्जी बनाई। मुझे याद नहीं कि इतनी स्वादिष्ट

सब्जी फिर मैंने खाई । ममता वैसे भी पाककला में निष्णात हैं । इससे भी ज़्यादा मुझे ममता का रवींद्र कालिया को मनुहार कर-करके खिलाना याद आता है । खाने के बाद हम लोगों का पान खाने का प्रोग्राम बना । अवध और रमेश उपाध्याय पान खाने नीचे उतरने लगे तो मैंने कहा कि मैं भी चलती हूँ तो रवींद्र कालिया ने यह कहकर मुझे रोक लिया कि यहाँ अकेले बैठे हुए मैं किसका चेहरा देखूँगा । यह उनके खिलंदड़ेपन और मज़ाकिया स्वभाव को बताता है ।

ममता और रवींद्र कालिया की ज़िंदादिली यारबाशी और अपनत्व देखकर यही लगा कि ये दोनों 'मेड फार ईच अदर' हैं । हालाँकि साहित्य में ममता मेरी पहली पसंद रही है—'बेघर', 'दौड़' और 'नरक-दर-नरक' लिखने वाली शानदार लेखिका—लेकिन रवींद्र का अपना आभामंडल था । वैसा यारबाश और संपादन में नया प्रतिमान रचनेवाला संपादक अब दूसरा शायद ही होगा । उनका संपादन विवादास्पद भी काफी रहा लेकिन मुझे लगता है कि विवाद और प्रपंचों में रहने की उनकी प्रवृत्ति कहीं-न-कहीं साहित्य को केंद्र में लाने की उदारता से जुड़ी थी । अपने संपादन में वे कैसे किसी लेखक को स्टार बना देते थे, इसका उदाहरण 'वर्तमान साहित्य' का महाविशेषांक है । इसमें उन्हें सबसे अच्छी कहानी कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' लगी थी । इस कहानी के छपने से पहले ही उन्होंने बड़े-बड़े लेखकों से उस पर समीक्षात्मक लेख लिखवा

लिए थे। उसी अंक में एक-से-एक शानदार कहानियाँ थी, लेकिन 'ऐ लड़की' को जिस तरह उछाला गया, वह अद्भुत था। इस पर उनके साथ हमारी काफी बहस भी हुई।

बहुत दिन हो गए थे ममता और रविजी से बातचीत हुए। हाल-चाल जानने के लिए अवध ने इलाहाबाद फोन लगाया। कुशलक्षेम के उपरांत पूछा। "तुमने 'आवाँ' पढ़ा? कहा, मुझे 'आवाँ' की प्रति चाहिए। फौरन भिजावाओ।" अवध ने 'आवाँ' की प्रति भेजते हुए छोटी सी चिट्ठी लिखी। 'प्रिय रवि, तुम्हें तुम्हारी दीदी का उपन्यास भेज रहा हूँ, पढ़कर बताना।'

बहुत दिनोंपरान्त एक लिफाफा आया। लिफाफे में लखनऊ से प्रकाशित होनेवाले 'हिंदुस्तान' के स्थानीय संस्करण में प्रकाशित होने वाले कॉलम 'इन दिनों' की कतरन थी जिसमें रवींद्र कालिया ने लिखा था—'मैं इस शताब्दी की आखिरी किताब लिखना चाहता हूँ। वह किताब थी 'गालिब छूटी शराब'। उसी में उन्होंने लिखा था 'इन दिनों मैं चित्रा का उपन्यास 'आवाँ' पढ़ रहा हूँ। यह भी बंबई के ट्रेड-यूनियनों और सांप्रदायिकता पर है। दत्ता सामंत की मौत तक। अच्छा लग रहा है और लगता है कि यह हिन्दी का महत्वपूर्ण उपन्यास होगा। 'इन दिनों' वह क्या लिख-पढ़ रहे हैं की प्रस्तुति की थी प्रवीण ने।

कॉलम की कतरन के साथ हाशिए की खाली जगह पर एक छोटी-सी चिट्ठी उन्होंने अपने हाथ से लिखी थी—

‘प्रिय जीजाजी, आपका पत्र एवं दीदी का उपन्यास ‘आवाँ’ मिला । आपके आदेशानुसार पढ़ रहा हूँ । प्रमाण-पत्र संलग्न है ।’ आपका साला, रवींद्र कालिया (27-10-1999 इलाहाबाद) ।

बहुत प्रकट नहीं करते थे न ऊपरी तौर पर जताते थे लेकिन अपने दोनों बेटों से उन्हें बेहद प्यार था । इंदौर में पढाई पूरी होने पर बड़े बेटे अनु की नियुक्ति जब अहमदाबाद की एक बहुत बड़ी कंपनी में बड़े पद पर हुई तो अकसर वे टिकट के आरक्षण को लेकर अवध को फोन कर पी.एन. आर. नंबर नोट करा, चिंतित स्वर में याद दिलाते रहते कि रेलवे बोर्ड में तुम्हारे मित्र महेंद्र कुमार मिश्राजी हैं- अनु का टिकट कन्फर्म हो जाना चाहिए । मनु को मैं दूर नौकरी करने नहीं भेजूँगा । उसे अपने पास ही रखूँगा । मनु मेरा प्रेस सँभालेगा ।

जैसा कि मैंने कहा कि हमारे पाँच दशक से पारिवारिक रिश्ते थे । उन दिनों हम मुंबई में प्रताप नगर की एक खोली में रहते थे । उस खोली को मैंने जिस तरह सजाया था उसे देखकर रवींद्र अकसर कहा करते कि यह सुपर चाल का सुपर कमरा है । बच्चों से उन्हें बहुत प्यार था । हमारे बच्चे अकसर उनका इंतज़ार करते । मेरे बेटे गुड्डू की उन्होंने बहुत तस्वीरें खींचीं । जब भी गुड्डू रोता ये उसे गोद में उठाकर ले जाते, खिलाते-पिलाते और तस्वीरें खिंचाते । रवींद्र काफी समय से बीमार थे, लेकिन उनकी

ज़िंदादिली देखकर लगता नहीं था कि वे इतनी जल्दी चले जाएँगे। कठिन-से-कठिन बीमारियों को झटका देने में वे उस्ताद थे, लेकिन सब इतनी जल्दी घट गया कि अभी तक यकीन नहीं हो रहा।

अब जब भी ममता का फोन आता है तो सोचती हूँ कि उसके हाथ से फोन झटककर यह कहने वाला कोई नहीं होगा कि मैं रवींद्र कालिया बोल रहा हूँ चित्रा।



5-कस्तूरी कुंडल बसै

-इष्ट देव सांकृत्यायन

लेखक परिचय

इष्ट देव सांकृत्यायन का जन्म 30 नवम्बर 1971 को गोरखपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने व्यंग, उपन्यास, कहानी, यात्रा संस्मरण, लेख, अनुवाद जैसी साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है।

भ्रष्टाचार एक ज्वलंत समस्या है। यह ऐसा रोग है, जो देश को खोखला करता जा रहा है। इसी मुद्दे को व्यंगात्मक रूप से “कस्तूरी कुंडल बसै” नामक विचारात्मक निबंध में पेश किया गया है।

* * * * *

पता नहीं, भ्रष्टाचार जी ने कुछ लोगों का क्या बिगाड़ा है जो वे आए दिन उनके पीछे ही पड़े रहते हैं। कभी धरना दे रहे हैं कि भ्रष्टाचार मिटाओ, कभी प्रदर्शन, नारेबाज़ी. रास्ताजाम ... और न जाने क्या-क्या! कभी दिल्ली का रामलीला मैदान भर डाला और कभी जंतर-मंतर पर लोगों का आना-जाना दुश्वर कर दिया। खैर, भ्रष्टाचार जी को इससे फर्क ही क्या पड़ता है! उन्होंने ऐसे बहुत लोगों को आते-जाते देखा है। इसीलिए तो वह पूरे आत्मविश्वास के साथ गाते रहते हैं, ‘तुमसे पहले कितने जोकर आए और चले गए/ कुछ जेबें भरकर गुज़र गए कुछ जूते खाकर चले गए ... ।’ एक वही हैं जिनके लिए जाने

कहाँ से लगातार यह सदा आती रहती है, “वीर तुम बढ़े चलो/ धीर तुम बढ़े चलो/ ...सामने पहाड़ हो/ सिंह की दहाड़ हो/ तुम निडर हटो नहीं/ तुम निडर डटो वहीं ... ।” फिलहाल तक की हिस्ट्री तो यही है कि उन्हें भगाने जितने आए, खुद ही भाग गए । अब यह अलग बात है कि चले जाने के सबके अपने अलग-अलग तरीके थे । कुछ तोप चलाकर चले गए, कुछ जाँच कराकर चले गए, कुछ हल्ला मचाकर चले गए, कुछ इलेक्ट्रॉनिक कैंपेन पचलाकर चले गए, कुछ सलवार-कमीज़ पहन कर चले गए, कुछ जूस पीकर चले गए ... पर चले सभी गए ।

एक भ्रष्टाचार जी ही हैं, जो अपनी सहोदरी भगिनी महँगाई की तरह लगातर बढ़ते गए हैं । पता नहीं, लोग क्यों उनके पीछे पड़े रहते हैं, जबकि उन्होंने भारतभूमि की महान परंपराओं का हमेशा पूरे मनोयोग से अनुपालन किया है । सच पूछिए तो उनके इस दिन दूने रात चौगुने विकास का रहस्य भी यही है । कुछ लोग बताते हैं कि बहन महँगाई जी उनसे दो-चार दिन बड़ी हैं, कुछ कहते हैं कि दो-चार दिन छोटी और कुछ तो बताते हैं कि जुड़वाँ हैं । जो भी हो, पर दोनों देखे हमेशा साथ-साथ जाते हैं, हमेशा एक-दूसरे के सहयोग में प्राणप्रण से जुटे हुए । कभी भ्रष्टाचार जी आगे बढ़कर महँगाई जी को आगे निकलने का रास्ता दे देते हैं और कभी महँगाई जी थोड़ा आगे चलकर भ्रष्टाचार जी के लिए रास्ता बना देती हैं । आम तौर पर देखा यही जाता है कि

जहाँ पुरुष अधिक होते हैं, वहाँ भाई यानी भ्रष्टाचर जी आगे बढ़कर मँगाई जी के लिए रास्ता खाली करा देते हैं और जहाँ महिलाएँ अधिक होती हैं, वहाँ मँगाई जी आगे बढ़कर भाई के लिए रास्ता खाली करा देती हैं । जिन सरकारी महकमों को सामंजस्य की कमी के लिए सबसे ज़्यादा कोसा जाता है, वहाँ इनके सामंजस्य और समन्वय का असर तो देखते ही बनता है । रेलवे आरक्षण की खिड़की से लेकर सरकारी अस्पताल के मुर्दाघर तक ... आप कहाँ-कहाँ देखना चाहते हैं, बताइए न । अब अगर ये आगे नहीं बढ़ेंगे तो और कौन बढ़ेगा? हिन्दी के साहित्यकार, जो दिन-रात केवल एक-दूसरे की टाँग खिंचाई में लगे रहते हैं?

लेकिन अब ईर्ष्या करने वालों का आप क्या कर लेंगे! पवित्र स्नेह के जीवंत उदाहरण बने भाई-बहन के इस जोड़े को लेकर भी जाने लोग कैसी-कैसी उल्टी-सीधी बातें करते रहते हैं । खैर, आप तो जानते ही हैं, इस दुनिया में कुंठितों की कमी नहीं है और कुंठित लोग इसके अलावा और कर ही क्या सकते हैं! कभी कहेंगे जाँच कराओ । जाँच करा के रपट भी मँगा दी तो कहेंगे कि नहीं, अब इससे नहीं उससे कराओ । लो भाई, उससे भी करा दी । तब कहेंगे कि चलो अब कोर्ट में साबित कराओ । कोर्ट भी ससम्मान दोषमुक्त कर दे तो पूछेंगे कि आय से अधिक वाले मामले की जाँच क्यों नहीं होगी? अरे भाई, आय से अधिक का

कोई मामला हो ही कैसे सकता है? जितना कुछ आय, वह आय ही तो है! अब जो आया, वह अगर आय नहीं तो और है क्या? और जब आय है तो फिर उससे अधिक की बात कहाँ से आ गई? इतना सीधा सा तर्क भी लोग नहीं समझते। फिर कहते हैं कि कोर्ट ही गलत है। बस यही एक सही हैं, बाकी पूरी दुनिया गलत।

इसलिए मैं तो कहता हूँ कि कुंठित लोगों की बात ही मत सुनिए। अगर सुनना ही हो तो संतों के वचन सुनें, ज्ञानियों के लेख पढ़ें और विशेषज्ञों की बातें सुनें। अब देखिए, समझदार अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भ्रष्टाचार जी असल में विकास जी के बहुत करीबी रिश्तेदार हैं। जहाँ-जहाँ विकास जी जाते हैं, वहाँ-वहाँ भ्रष्टाचार जी अपने आप पहुँच जाते हैं। हालाँकि मुझे यह मामला थोड़ा उलटा दिखाई देता है। (वैसे आपकी सुविधा और मेरे हित के लिए मेरा पहले ही यह मान लेना ठीक रहेगा कि मुझे बहुत सारी चीजें उलटी दिखाई देती हैं। यह शायद किसी ज़माने में दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी रहे होने का नतीजा हो। आप उसे अपने हिसाब से समझने के लिए स्वतंत्र हैं। आप मेरे हिसाब से न भी समझें तो मैं आपका कर ही क्या लूँगा?) खैर, तो मुझे ऐसा लगता है कि विकास जी बाद में, भ्रष्टाचार जी पहले पहुँचते हैं। यानी यह मामला आग और धुएँ जैसा है। जिस प्रकार जहाँ-जहाँ आग है वहाँ-वहाँ धुआँ है, ठीक प्रकार जहाँ-जहाँ भ्रष्टाचार जी हैं, वहीं-

वहीं विकास जी हैं ।

कम-से-कम अपने बगल वाले शुक्ला जी को देखते हुए तो मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूँ । शुक्ला जी जब तक अपने तृतीय श्रेणी कर्मी पिता के बताए आदर्शों पर चलते रहे, प्रशासनिक अफसर होकर भी बेचारे क्लर्को जैसा जीवन जीते रहे । पोस्टिंग भी कहीं ढंग की नहीं मिली । वही सचिवालय में फाइलों के ठेले बने रहे ... । वो तो भला हो उनकी शिक्षकतनया भार्या का, जिसने महँगाई देवी का हवाला देते हुए उन्हें ज़माने का चलन समझाया । जैसे ही शुक्ला जी ने उसकी दी हुई शिक्षा के अनुरूप यह चलन समझा और भ्रष्टाचार जी के शरण में गए, उनके यहाँ विकास जी के आने की फ्रीक्वेंसी ऐसी बढ़ी कि साल बीतते-बीतते कॉलोनी के सारे विकासधर्मा महापुरुष उनसे जलने लगे । तो जनाब यह बात मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ, इसे आप कोई दार्शनिक तर्क न मानें । ऐसे कई और जीवंत प्रमाण मेरे पास हैं, जिनमें आधुनिक विकास जी की प्रक्रिया ही भ्रष्टाचार जी के बाद शुरू हुई और इसीलिए मैं आग भ्रष्टाचार जी को मानता हूँ, बाकी विकासजी तो सिर्फ धुआँ हैं । सेंसेक्स की तरह आते-जाते, चढ़ते-उतरते रहने वाले अस्थिर और कुछ-कुछ मायावी टाइप ।

वैसे प्रवचन-लेख, साक्ष्य-विधि वाले थोथे तर्कों के बूते की यह बात भी नहीं है कि वे भ्रष्टाचार जी को साबित

कर सकें। यकीन न हो तो आज़ादी के बाद से लेकर अब तक के सारे मामलों पर नज़र डाल लें। भ्रष्टाचार जी वस्तुतः सिर्फ अनुभवगम्य हैं। अपने निजी अनुभव के अलावा और किसी भी तरह से उन्हें जाना नहीं जा सकता। वैसे ही जैसे कि भगवान। कहीं न होते हुए भी वह हर जगह हैं, कण-कण में व्याप्त हैं। 'हो भी नहीं और हर जगह हो' टाइप। वह किसी को दिखाई नहीं देते हैं, लेकिन असल में सबकी आँखों के नूर वही हैं। अगर किसी की आँखों में वह नहीं हैं, तो उसकी आँखों में जो नूर है ... धत्तरे की, भला वह भी कोई नूर है। इसीलिए सीबीआई उन्हें ढूँढ़ने जाती है और नहीं पाती। माननीय न्यायालय में विद्वान न्यायाधीश साक्ष्यों पर सदियों सिर धुनते हैं और उन्हें नहीं पाते। हीरों के भंडार खत्म हो जाते हैं, लेकिन कोयले की खदानों के आबंटन में भ्रष्टाचार जी की भूमिका की जाँच पूरी नहीं हो पाती। ... और भारतवर्ष के किसी भी सरकारी दफ्तर में उनके बगैर कोई काम नहीं होता। आप इसे कुछ यूँ भी समझ सकते हैं कि हर मंत्री-अफसर बड़े गर्व से यह घोषणा करता है कि उसके विभाग में बिलकुल भ्रष्टाचार नहीं है और दुसरी तरफ उसे मिटाने के दावे भी करता है। दफ्तरों के बाहर भ्रष्टाचार जी के खिलाफ बड़े-बड़े इश्तहार टंगे हैं, कानून की किताबों में बड़ी भयानाक किस्म की, लगभग दैत्य टाइप, धाराएँ छुपी पड़ी हैं। सब में दावे हैं कि इस तरह से भ्रष्टाचार को मिटाना है। यह कुछ उन गुरुओं

की आस्था जैसा मामला है जो एकतरफ तो कहते हैं कि भगवान सब देख रहा है और दूसरी तरफ न देखने लायक सारे काम भी किए जा रहे हैं ।

इसलिए जब कोई मंत्री या अफसर अपने विभाग में भ्रष्टाचार जी के न होने का दावा करता है और उन्हें इनाम देने की घोषणा करता है जो भ्रष्टाचार जी को ढुँढ़वाने में मदद करें तो मुझे कबीर याद आते हैं, 'कसूरी कुंडल बसै, मृग ढुँढ़त बन माहिं ।' तो हे वत्स, भ्रष्टाचार जी को जानने के लिए तर्कों और इंद्रियगम्य साधनों का सहारा लेना छोड़ दें। साफ तौर पर जान लें कि इन्हें सिर्फ अपने अनुभव से ही जाना जाता है और अनुभवगम्य मामलों को समझने में बाहरी कर्मकांड बहुत काम नहीं आते । जिस प्रकार पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन से भगवान को प्रसन्न तो किया जा सकता है पर जाना नहीं जा सकता, ठीक उसी प्रकार भ्रष्टाचार जी को भी दान और स्तुतिगान से प्रसन्न तो किया जा सकता है, लेकिन जाना नहीं जा सकता । परमपिता परमेश्वर की ही तरह उन्हें भी जानने के लिए अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है और आप तो जानते ही हैं, यह कम ही महापुरुषों के पास होती है । जिनके पास होती है, वे जानते ही हैं कि जो सबसे ज्यादा बढ़-चढ़ कर भ्रष्टाचार जी का विरोध कर रहा है, वास्तव में वही उनका सबसे बड़ा सेवक है । आप तो जानते हैं कि बड़े भक्तों ने भगवान को गालियाँ तक दी हैं और भगवान ने बर्दाश्त ही नहीं किया, उन्हें इसके

बावजूद् आशीष और वरदान भी दिए हैं । यह कुछ वैसा ही मामला है, जैसे कुछ बुद्धिजीवी सेमिनारों में अनीश्वरवाद पर लंबे प्रवचन देने के बाद घर पहुँचते ही श्री सत्यनारायण व्रत कथा सुनते हैं । ग्रह शांति कराते हैं । बकलोल लोग उनकी अनीश्वरवादिता पर मुग्ध और समझदार लोग विद्वानों के झोले ढोकर प्रवचन के निहितार्थ जान लेते हैं । ऐसी ही बकलोल लोग भ्रष्टाचार जी के पीछे पड़े रहते हैं और समझदार लोग आगे बढ़कर उनके स्वागत में रेड कार्पेट बिछा देते हैं । आगे तो आप बस यूँ समझें कि रेस्ट विल बी हिस्ट्री ।



6-बहता पानी निर्मला

-सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

लेखक परिचय

हिन्दी प्रयोगवादी युग प्रवर्तक रचनाकार 'अज्ञेय' का जन्म 1911 ई. में गोरखपुर के कसया (कुशीनगर) उ.प्र. में हुआ था। आपका मूल स्थान पंजाब प्रान्त का कर्तारपुर नामक नगर था। आरंभिक शिक्षा घर पर ही संस्कृत से शुरू हुई। मुद्रास, कश्मीर, लाहौर, दिल्ली और इलाहाबाद में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद अंग्रेजी में एम. ए. करते समय ही क्रांतिकारी संगठनों में कार्य करने के कारण गिरफ्तार कर लिए गये। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी तथा यात्रा साहित्य को नयी दिशा दी है। 'शेखर एक जीवनी', 'अपने-अपने अजनबी' और 'नदी के द्वीप' उनके चर्चित उपन्यास हैं। एकदर्जन से अधिक काव्य संग्रह हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूंद सहसा उछली' यात्रा-वर्णनों के संग्रह हैं। उनका निधन सन् 1987 ई. में हुआ।

'बहता पानी निर्मला' यात्रा-विवरण 'अरे यायावर रहेगा याद' से चयनित है। 'अज्ञेय' ने इसमें भ्रमण के महत्व तथा स्वरूप को रोचक ढंग से उदघाटित किया है। नक्रशे के द्वारा यात्रा की तैयारी एवं यात्रा में घटित होनेवाली अप्रत्यक्षित घटनाओं का रोचक वर्णन किया गया है। पानी बहते रहने पर निर्मल रहता है और बंध जाने पर गन्दा होने लगता है। यही

हालत मनुष्य की भी है। चलते रहने में ही उसके जीवन की सार्थकता है—स्थिर होकर बैठ जाने में नहीं। रमते रहने में ही राम है।

रोमांचक और स्मरणीय यात्रा में नक्रशो के महत्व और उसके योगदान को ध्यान में रखकर प्रस्तुत यात्रा—वृत्तांत चयनित हुआ है।

* * * * *

मुझे बचपन से नक्रशो देखने का शौक है। आप समझेंगे कि कुछ भूगोल विज्ञान की तरफ प्रवृत्ति होगी नहीं, सो बात नहीं; असल बात यह है कि नक्रशों के सहारे दूर—दुनिया की सैर का मज़ा लिया जा सकता है। यों तो वास्तविक जीवन में भी काफी घूमा—भटका हूँ, पर उससे कभी तृप्ति नहीं हुई, हमेशा मन में यही रहा कि कहीं और चलें, कोई और नयी जगह देखें, और इस लालसा ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ा है। नक्रशों से यह फायदा होता है कि मन के घोड़े पर सवार होकर कहीं चले जाइये, कोई रोक नहीं, अड़चन नहीं, और जब चाहे लौट आइये, या न लौटिए—कोई पूछने वाला नहीं कि हज़रत कहाँ रम रहे!

यो तो नक्रशों में तरह—तरह के रंगों से कुछ मदद मिलती है यह तै करने में कि कहाँ जावें। जिसे हरी—भरी जगह देखनी हो; वह भूरे या पीले प्रदेशों में चला जाय और जिसे एकदम अछूते, अपरचित प्रदेश में जाने का जोखिम पसंद हो वह बिल्कुल सफेद हिस्सों की ओर चल निकले।

अनादिकालीन बर्फीले मरुप्रदेशों में, जंगलों में, समुद्र में, समुद्र द्वीप में नक्शों में कहीं लिखा रहता है कि इस प्रदेश की सर्वे नहीं हुई -हिमालय के अनेक भाग ऐसे हैं- या कि 'अगम्य जंगल !' -असमिया सीमा प्रदेश में ऐसे स्थल हैं; ज़रा कल्पना कीजिए ऐसी जगहों में जा निकलने का आनंद।

लेकिन इससे अधिक सहायता मिलती है जगहों के नामों से। बचपन में एकनाम पढ़ा था 'अमरकंटक : यह नाम ही इतना पसंद आया कि मैंने चुपके से एक कम्बल और दो चार कपड़ों का बण्डल बना लिया कि अभी चल दूँगा वहाँ के लिए। वहाँ जाना नहीं हुआ, अभी तक भी अमरकंटक नहीं देखा है और इस प्रकार उसका काँटा अभी तक सालता ही है, पर नक्शों की यात्रा तो कई बार की है, और अमरकंटक के बारे में इतना सब जानता हूँ जो वहाँ जाकर जान पाता। ऐसा ही एक और नाम था तरंगंबाड़ी -यों नक्शों में उसका रूप विकृत होकर त्रान्कुबार हो गया है। 'तरंगों वाली बस्ती' - सागर के किनारे के गाँव का यह नाम सुनकर क्या आपके मन में तरंग नहीं उठती कि जाकर देखें ? कई नाम ऐसे भी होते हैं जिनका अर्थ समझ में नहीं आता, पर ध्वनी ही मोह लेती है। जैसे 'तिरुकुरंगुडी' -नाम सुनकर लगता है, मानो हिरणों का समूह चौकड़ी भरता जा रहा हो। कुछ नाम ऐसे भी होते हैं कि अर्थ जानने पर ही उनका जादू चलता है जैसे 'लू-हित', उपरी ब्रह्मपुत्र के इस नाम को

संस्कृत करके लोहित्य बना लिया गया है जिससे अनुमान होता है कि वह लाल या ताम्र वर्ण की होगी पर वास्तव में लहित का अर्थ है 'तारों की राजकन्या' या ऐसा ही कुछ। ब्रह्मपुत्र का सौंदर्य जिन्होंने नहीं देखा उनकी तो बात ही क्या, जिन्होंने देखा भी है वे भी क्या इस नाम को जानकर 'तारों की राजकन्या' के तरुण लावण्यमय रूप देखने को ललक न उठेंगे?

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात; मैं कुछ होनहार बिरवा तो नहीं था, पर नक्शों के बगदादी कालीन पर बैठकर हवाई यात्रा करने की इस आदत से यह तो पता लग ही सकता था कि आगे चलकर भी कहीं टिक कर नहीं बैठूँगा। बात भी ऐसी है, लगातार कुछ दिन भी एक जगह रहता हूँ तो कुछ अपनी इच्छा से नहीं, लाचारी से और उस लाचारी में बहुत से नक्शे जुटाकर फिर अपने लिए कोई हीला निकल ही लेता हूँ। और आप सच मानिए, जीने की कला सबसे पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की कला है, कम-से-कम आधुनिक काल में जब मानव-जाति का इतना बड़ा अंश या तो प्रवासी है, या शरणार्थी ही : एक स्थान से दूसरे स्थान, एक पेशे से दूसरे में; एक घर से दूसरे घर, इत्यादि।

यात्रा करने के कई तरीके हैं एक तो यह कि आप सोच विचार कर निश्चय कर लें कि कहाँ जाना है, कब जाना है, कहाँ-कहाँ घूमना है कितना खर्च होगा: फिर उसी

के अनुसार छुट्टी लीजिए टिकट कटवाइये, सीट का बर्थ बुक कीजिए, होटल डाक-बंगले को सूचना देकर रिज़र्व कराइये या भावी अतिथियों को खबर दीजिये—और तब चल पड़िये । बल्कि तरीका तो यही एक है—क्योंकि यह व्यवस्थित तरीका है । और इसमें मज़ा बिल्कुल नहीं है यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बहुत से लोग ऐसी यात्रा करते हैं और बड़े उत्साह से भरे वापस आते हैं ।

दूसरा तरीका यह है कि आप इरादा तो कीजिये कहीं जाने का, छुट्टी भी लीजिए, इरादा और पूरी योजना भी चाहे घोषित कर दीजिए, पर ऐन मौके पर चल दीजिए कहीं और को । जैसे घोषित कर दीजिए कि बड़े दिनों की छुट्टियों में बंबई जा रहे हैं, लोगों को ईर्ष्या से कहने कीजिए कि अमुक बंबई का सीज़न देखने जा रहा है, मगर चुपके से पैक कर लीजिए जबरदस्त गर्म कपड़े और जा निकलिए बर्फ से ढके श्रीनगर में!

लेकिन अपनी भी कुछ बात कहूँ । मैं दूसरे तरीके का कायल हूँ यह तो आप समझ ही गए होंगे, लेकिन जब निकलता ही हूँ, तब एक तरीका ही अख्तियार करता हूँ जैसे कहो तो सबसे यह कि बंबई जा रहे हैं, मगर स्टेशन गए तो यह तै करके कि नैनीताल जा रहे हैं और वहाँ से हिमालय के भीतरी प्रदेशों में, और इस तरह जा सकते—शिलंग !

शिवसागर से आगे सोनारी के पास डि-खू नदी की बाढ़ में कैसे फँस गया था इसका यही रहस्य है ।

अंग्रेज़ी में कहावत है कि 'एक कील की वजह से राज्य खो जाता है। वह यों कि कील की वजह से नाल, नाल की वजह से घोड़ा, घोड़े के कारण लड़ाई, और लड़ाई के कारण राज्य से हाथ धोना पड़ता है। हमारे पास छिनने को राज्य तो था नहीं, पर एक दाँत माँजने के ब्रुश और मोटर की एक मामूली-सी ढिबरी के लिए हम कैसी मुसीबत में पड़े यह हमीं जानते हैं!

सोनारी एक छोटा-सा गाँव है। अहाम राजाओं की पुरानी राजधानी शिवसागर से कोई अठारह मील दूर। वहाँ भी नाम के आकर्षण से चला गया था। यों असम में 'सोना' या 'स्वर्ण' बहुत से नामों में हैं—'सुबनश्री', 'सोन-भराती', वगैरह और असम भी 'सोनार अस्म' 'सोने का असम' कहलाता है! बरसात के दिन थे, रास्ता खराब था। एक दिन सबेरे घूमने निकला तो देखा कि नदी बढ़कर सड़क के बराबर आ गयी है। मैं शिवसागर से तीन-चार मील पर था, सोचा कि एक नया दाँत-ब्रुश ले लूँ क्योंकि पुराना घिस चला था; और मोटर की भी एक ढिबरी ठीक करवाकर ही लौटूँ, उसकी चूड़ी घिस जाने से थोड़ा-थोड़ा तेल चूता रहता था, वैसे कोई ज़रूरी काम नहीं था, खैर इसमें कोई दो घंटे लग गये, खाना खाने में एक घंटा और तीन घंटे बाद वापस लौटने लगा तो देखा, सड़क पर पानी फैल गया है। पानी गहरा नहीं होगा, यह सोचकर मैं मोटर बढ़ाता चला गया। आगे देखा, सब ओर पानी ही पानी है। सड़क का

कहीं पता नहीं लगता, सिर्फ पेड़ों की कतार से अंदाज़ लग सकता था। पर पानी बड़े ज़ोर से एक तरफ से दूसरी तरफ बह रहा था, क्योंकि सड़क के एक तरफ नदी थी, दूसरी तरफ नीची सतह के धान के खेत, जिनकी ओर पानी बढ़ रहा था। पानी के धक्के से सड़क कई जगह टूट गयी थी। मैं फिर भी बढ़ता गया, क्योंकि आखिर पीछे भी तो पानी ही है। पर थोड़ी देर बाद पानी कुछ और गहरा हो गया और उसके धक्के से मोटर भी सड़क से हटकर किनारे की ओर जाने लगी; आगे कहीं कुछ दिखता नहीं था, क्योंकि सड़क की सतह शायद दो-तीन मील आगे तक बहुत नीची ही थी। सड़क के दोनों ओर जो पेड़ थे उनमें कईयों पर साँप लटक रहे थे क्योंकि बाढ़ से बचने के लिए वे पहले सड़क पर जाते थे और फिर पेड़ों पर चढ़ जाते थे।

मैंने लौटने का ही निश्चय किया। पर सड़क दिखती तो थी नहीं, अंदाज़ से ही मैं बिच के पक्के हिस्से पर गाड़ी चला रहा था। मोड़ने के लिए उस पटरी से उतारना पड़ेगा— और इधर—उधर सड़क है भी कि नहीं इसका क्या भरोसा? मैं और एक जगह देख भी चुका था कि आँखों के सामने ही कैसे समूचा ट्रक दलदल में धँसकर गायब हो जाता है। इसलिए मोटर को बिना घुमाये उलटे गियर में ही कोई ढाई मील तक लाया, यहाँ सड़क कुछ ऊँची थी, उस पर गाड़ी घुमाकर शिवसागर पहुँचा।

शिवसागर से सोनारी को एक दूसरी सड़क भी

जाती थी। चाय-बागानों में से होकर, यह सड़क अच्छी थी पर इसके बीच में एक नदी पड़ती थी जिसे नाव से पार करना होता था। मैंने सोचा कि इसी रास्ते चलें, क्योंकि सामान तो सब सोनारी में था, मैं डाक-बंगले से कुछ घंटों के लिए ही तो निकला था! शिवसागर में एक तो मोटर की ढिबरी बनवानी थी, और दुसरे दांत-ब्रश और कुछ तेल-साबुन लेना था, बस। वह भी लौटने की जल्दी के कारण नहीं लिया था।

इस सड़क से नदी तक तो पहुँच गए वह भी बड़ी मुश्किल से, क्योंकि रास्ते में बड़ी फिसलन थी और गाड़ी बार-बार अटक जाती थी। नदी में नाव पर गाड़ी लाद भी ली, और पार भी चले गये; यहाँ भी नदी में बड़ी बाढ़ आई थी और बहते हुए टूटे छप्पर बता रहे थे कि नदी किसी गाँव को लीलती हुई आयी है—एक भैंस बहती हुई आयी और पेड़-पौधों की तो गिनती क्या। उस पार नदी का कगारा उँचा था; मोटर के लिए उतारा बना हुआ था। लेकिन नाव किनारे तक जो तख्त डाले गए थे, वह ठीक नहीं लगे थे, मोटर जब सड़क पर आयी और नाव एक तरफ को झुकी तो तख्ते फिसल गए, नाव दूर हट गयी, मोटर नीचे गिरी, आधी पानी में आधी किनारे पर; मैं जोर से ब्रेक दबाये बैठा था, पर ऐसे अधिक देर तक तो नहीं चल सकता था। लेकिन मैं तो मोटर के साथ खुद बंधा था, उतरकर समझा नहीं सकता था! खैर, आधा घंटा उस स्वर्गनसैनी पर बैठे-बैठे,

असमिया, हिन्दी और बंगला की खिचड़ी में लोगों को बताता रहा कि क्या करें, तब मोटर ऊपर चढ़ाई जा सकी। थोड़ा आगे ही सोनारी से आये दो साइकिल-सवारों से मालूम हुआ कि वे कंधे तक पानी में से निकल कर आये हैं—साइकिलें कंधों पर उठाकर! और मोटर तो कदापि नहीं जा सकती।

इस तरह इधर भी निराशा थी। पानी अभी बढ़ रहा था, यह गाँव ऊँची जगह पर था पर यहाँ कैद हो जाना मैं नहीं चाहता था, इसलिए फिर नाव पर मोटर चढ़ाकर उसी रास्ते नदी पार की। सबसे मना क्रिया पर मेरे सिर पर भूत सवार था और हठ-धर्मी का अपना अनूठा रस होता है।

रात शिवसागर पहुँचे। एक सज्जन ने ठहरने की जगह दी, भोजन-बिस्तर का प्रबंध भी हो गया, पर दाँत का ब्रश तो उधर नहीं लिया जा सकता! सबेरे-सबेरे चलकर अस्सी मील दूर डिब्कगढ़ पहुँचे, वहाँ ब्रुश लेकर मुँह-हाथ धोकर सुस्त हुए, यहीं एक कमीज़ और पैट खरीद कर कपड़े बदले, रात के लिए एक कम्बल खरीदा। मन-ही-मन अपने को कोसा कि न नया दाँत ब्रुश लेने के लिए सोनारी निकले होते, न यह मुसीबत होती—क्योंकि इसकी ऐसी तात्कालिक ज़रूरत तो थी नहीं, न मोटर कि डिबरी का मामला ही इतना ज़रूरी था। लेकिन अब उपाय क्या था?

इस तरह बारह दिन और काटने पड़े, क्योंकि सोनारी के सब रास्ते बंद थे। लौटकर देखा, सोनारी के डाक बंगले

में भी पानी भर गया था, कपडे सब सील कर सड़ रहे थे, किताबें तो गल ही गयी थीं। बचा था तो केवल स्नानघर में ऊँचे ताक पर रखा हुआ साबुन का डिब्बा, और दाँतों का ब्रश।

नक्शे मैं अब भी देखता हूँ। वास्तव में जितनी यात्राएँ स्थूल पैरों से करता हूँ, उससे ज़्यादा कल्पना के चरणों से करता हूँ। लोग कहते हैं कि मैंने अपने जीवन का कुछ नहीं बनाया, मगर मैं बहुत प्रसन्न हूँ और किसी से ईर्ष्या नहीं करता। आप भी अगर इतने खुश हों तो ठीक—तो शायद आप पहले से मेरा नुस्खा जानते हैं—नहीं तो मेरी सलाह है, “जनाब, अपना बोरिया—बिस्तर समेटिए और ज़रा चलते—फिरते नज़र आइये।” यह आपका अपमान नहीं है, यह जीवन दर्शन का निचोड़ है। रमता राम इसीलिए कहते हैं कि जो रमता नहीं, वह राम नहीं। टिकना तो मौत है।



7-उल्काएँ

-डॉ.गोरख प्रसाद

लेखक परिचय

डॉ.गोरख प्रसाद का जन्म 1896 ई. में हुआ। विज्ञान के अध्येता और व्याख्याता होने के कारण अपने ही विषय पर हिंदी-साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया। पढ़ाने के साथ-साथ आपने सरल हिन्दी भाषा में विज्ञान-विषयक भिन्न प्रकार की जानकारी को पत्रिकाओं में प्रकाशित तो किया ही, साथ ही अनेक पुस्तकें भी लिखीं। आपकी शैली रोचक होती है और विषय को समझाने का ढंग भी मनोरंजक होता है।

प्रस्तुत लेख में लेखक ने उल्काओं के संबंध में ज्ञान बढ़ाने की बातें लिख हैं। उन्होंने उल्काओं के रूप और प्रभाव के साथ-साथ उल्काओं की विशेषताओं का भी विस्तार से वर्णन किया है।

* * * * *

रात को तारे अक्सर टूटकर गिरते हुए जान पड़ते हैं। ये ही उल्काएँ हैं। अधिकांश उल्काएँ तो हमारे वायुमंडल में ही भस्म हो जाती है और उनका कोई अंश पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाता। परंतु कुछ उल्काएँ बहुत बड़ी होती हैं। गिरते समय उनसे प्रचंड ज्वाला-सी निकलती है और सारी भूमि प्रकाशित हो उठती है। वायु को चीरते हुए भयानक वेग से उनके चलने का शब्द कोसों तक सुनायी पड़ता है और

पृथ्वी पर गिरने की धमक भूकंप-सी जान पड़ती है । सौभाग्य की बात है कि ऐसी बड़ी उल्काएँ कभी-कभी ही गिरती हैं अन्यथा उनके मारे हमारा रहना ही कठीन हो जाता ।

उल्काएँ वस्तुतः छोटे बड़े पिंड हैं, जो अंतरिक्ष में विद्यमान रहते हैं । जब कभी पृथ्वी इनमें से किसी पिंड के पास आ जाती है या वह पिंड पृथ्वी के पास आ जाता है तो, वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण खींच आता है । उसका वेग तब इतना बढ़ जाता है कि वायु के संघर्ष से उसकी सतह तप्त हो जाती है । तब उसमें से गैसों निकल पड़ती हैं, जो जल उठती हैं । इन्हीं जलती हुई गैसों के कारण उल्काएँ हमें दिखलायी पड़ती हैं । अन्यथा ठंडी होती हैं और उनमें से यों कुछ प्रकाश नहीं निकलता । कभी-कभी उल्काएँ हमारे वायुमंडल की रगड़ से फट जाती है और तब उसमें बिजली कड़कने के समान शब्द होता है ।

अपने स्वरूप के अनुसार उल्काओं की साधारणतया तीन जातियाँ मानी जाती हैं । यदि उल्का फीकी, केवल तारे की तरह जान पड़ती है तो उसे छोटी उल्का या टूटता तारा कहते हैं । यदि उल्का इतनी बड़ी हुई कि उसका कोई अंश पृथ्वी तक पहुँच जाए तो उसे उल्का-प्रस्तर कहते हैं । यदि उल्का बड़ी होने पर आकाश में ही फटकर चूर-चूर हो जाए तो उसे साधारणतः अग्नि-पिंड कहते हैं ।

छोटी उल्काओं में उन सब उल्काओं की गणना है

जो केवल अत्यंत मंद प्रकाश के तारे से लेकर शनि या बृहस्पति-जैसे ग्रहों की तरह चमक पाती है। ऐसी उल्काएँ प्रति रात्रि दिखलायी पड़ती हैं। अग्नि-पिंड बहुत कम दिखलायी पड़ते हैं। ये कम-से-कम बृहस्पति या शुक्र के समान चमकीले होते हैं और कभी-कभी तो पूर्णिमा के चंद्रमा से भी कई गुने बड़े और उससे भी कहीं अधिक चमकीले होते हैं। ऐसे बड़े अग्नि-पिंडों के हवा को चीरते हुए चलने का शब्द बादलों की गड़गड़हट-सा जान पड़ता है। और जब ये फटते हैं तो जान पड़ता है कि कान का परदा ही फट जाएगा। ज्ञात हुआ है कि अग्नि-पिंडों के फटने पर इनके इतने-इतने छोटे टुकड़े हो जाते हैं कि हमारे वायुमंडल में ही भस्म हो जाते हैं और उनका कोई अंश पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाता।

उल्का-प्रस्तरों से कैसी भयानक दुर्दशा हो सकती है, इसका अनुमान एक-दो उदाहरणों से हो सकेगा। साइबेरिया के येनी-शाई नामक एक छोटे-से प्रांत में 10 जून 1908 ई. को सात बजे सवेरे एक अत्यंत प्रचंड उल्का देखी गई। यद्यपि सूर्योदय हो चुका था, तो भी इसकी चमक अद्वितीय था। हजारों मनुष्यों ने इसे देखा और लाखों ने इसकी गड़गड़ाहट सुनी। इसके गिरने पर पृथ्वी काँप उठी। आसपास के शहरों में भूकंप के स्वयं-लेखन-यंत्र में पृथ्वी का कंपन अंकित हो गया। परंतु लोगों के बहुत चेष्टा करने पर भी उस स्थान का पता न चला जहाँ उल्का-प्रस्तर

गिरा था। पीछे इसका कारण ज्ञात हुआ। बात यह कि उल्का के प्रचंड तेज़ और भयानक शब्द से लोगों की यही धारणा हुई कि प्रस्तर कहीं पास में गिरा होगा, परंतु वस्तुतः वह एक निर्जन स्थान में येनीशाई से सौ मील दूर गिरा था।

यह स्थान पहले घना जंगल था। उल्का-प्रस्तर गिरने के बाद दूर तक भूमि तृणरहित हो गई थी। कई मील के घेरे में पृथ्वी ऐसी फट और खुद गई थी जैसे किसी कल्पनातीत भीमकाय हल से इसे जोत दिया गया हो। ज्वालामुखी पर्वतों के मुख के समान कई गड्ढे भी बन गए थे और मनुष्य मर गए थे। एक व्यक्ति ने बतलाया कि उसके एक संबंधी के पास डेढ़ हज़ार पशु थे, परंतु उल्का प्रस्तर के गिरने के बाद उनका कहीं भी पता न चला, केवल एक-दो पशुओं की चली-भुनी लाशों मिली थीं।

परंतु वहाँ कोई बड़ा पत्थर नहीं मिला। अनुमान किया जाता कि वस्तुतः एक प्रस्तर नहीं गिरा, बल्कि प्रस्तर-समूह गिरा होगा। सब पत्थर भूमि में बहुत गहरे धँस गए होंगे और इसलिए वे दिखलायी नहीं पड़ते। लोगों ने विचार किया है कि कभी खोदकर कुछ पत्थर निकाले जाएँगे। यह भी अनुमान किया जाता है कि इससे लोहे के हज़ारों टुकड़े निकलेंगे जिनमें से कुछ तो तीन-तीन हज़ार मन के होंगे।

प्राचीन भारतीय इतिहास में उल्का-प्रस्तरों के गिरने की चर्चा कहीं नहीं मिलती, परंतु अन्य देशों की प्राचीन पुस्तकों में कहीं-कहीं इसकी चर्चा आ गई है। 'बाइबिल'

में एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वर ने आकाश से बड़े-बड़े पत्थर गिराये हैं । संभवतः उल्का-प्रस्तर गिरे होंगे । प्राचीन रोमन ग्रंथकार ने 650 ईस्वी पूर्व में उल्का-प्रस्तरों की गिरने की बात लिखी है । लोगों ने इसे देवताओं के क्रोध का परिणाम समझा और इसलिए नौ दिन का व्रत रखने की आज्ञा कर दी गई । चीनी पुस्तकों में भी कहीं-कहीं पत्थर बरसने की बात लिखी है । आधुनिक समय में गिरे भारतवर्ष के कई उल्का-प्रस्तर कलकत्ता के अजायबघर में सुरक्षित रखे गए हैं । परंतु कोई बड़ा प्रस्तर अभी नहीं मिल सका ।



परिशिष्ट

वैज्ञानिक शब्दावली

1.	Acid	=	अम्ल
2.	Alkaline	=	क्षारीय
3.	Angle	=	कोण
4.	Basil	=	तुलसी
5.	Chromosome	=	गुणसूत्र
6.	Combustion	=	दहन
7.	Decay	=	क्षय
8.	Defrost	=	वितुषारण
9.	Detector	=	संसूचक
10.	Diagram	=	आरेख
11.	Distillation	=	आसवन
12.	Emission	=	उत्सर्जन
13.	Erosion	=	अपरदन
14.	Flood	=	बाढ़
15.	Fuel	=	ईंधन
16.	Geology	=	भूविज्ञान
17.	Hexagon	=	षट्कोण
18.	Horizon	=	क्षितिज
19.	Infectious	=	संक्रामक

20.	Kinetic energy	=	गतिज उर्जा
21.	Kidney	=	गुर्दा
22.	Laminate	=	पटलन
23.	Light amplifiers	=	प्रकाश प्रवर्धक
24.	Limestone	=	चुना पत्थर
25.	Lineage	=	वंश परंपरा
26.	Liver	=	जिगर, यकृत
27.	Magnetic	=	चुम्बकीय
28.	Momentum	=	संवेग
29.	Molecule	=	अणु
30.	Negative	=	ऋणात्मक
31.	Ointment	=	मरहम
32.	Ore	=	अयस्क
33.	Parameter	=	प्रचाल
34.	Propeller	=	नोदक
35.	Retina	=	दृष्टिपटल
36.	Rust	=	जंग
37.	Saline	=	खारा, लवणीय, नमकीन
38.	Saturated	=	संतृप्त
39.	Small pox	=	चेचक
40.	Submarine	=	पनडुब्बी

41.	Tempest	=	तूफान, झंझा
42.	Theory	=	सिद्धांत, वाद
43.	Topography	=	स्थलाकृति
44.	Vacuum	=	निर्वात
45.	Vapour	=	वाष्प, भाप
46.	Velocity	=	वेग
47.	Wax Chamber	=	मोम कक्ष
48.	Yeast	=	खमीर
49.	Yolk	=	पीतक
50.	Zenith	=	खमध्य, शिरोबिंदु

